30.00

December 2011

मरयम

करबला की औरतें

हुसैनी मक़सद

एक अहम फ़रीज़ा

कश्ती पर मातम

गुलों में रंग भरे...

अलमदारी की तारीख़

एक्चुअल या वर्चुअल

Turn Page for Gift Coupon 7

मरयम

का एक साल पूरा होने के मौक़े पर हम अपने
सब्सक्राइबर्स के लिए लेकर आ रहे हैं

ख़ुशियों की सौग़ात

और शुरू कर रहे हैं

एक स्कीम जिसमें हर महीने 5 ख़ुशनसीबों को मिलेंगे ख़ूबसूरत ज्वैलरी सैट, घर के इस्तेमाल के सामान और भी बहुत कुछ...

बस पढ़ती रहिए मरयम मैगज़ीन और इंतेज़ार कीजिए अपनी बारी का।

**इस महीने जिन 5 ख़ुशनसीबों को
मरयम की तरफ़ से ख़ूबसूरत तोहफ़े दिये जा रहे हैं
उनके नाम यह हैं:**

Ms. Ghazala Abbas, Saharanpur
Subscription ID: A00093

Mr. S. Mubeen Haider, Lucknow
Subscription ID: A00198

Mr. M. Basheer Babu ji, Lucknow
Subscription ID: A00206

Mr. Yaqoob Akhtar Zaidi, Muzaffarn
Subscription ID: A00516

Ms. Kiran Zehra, Chennai
Subscription ID: A00544

سلام بر حسین علیه السلام
السلام علیک یا ابا عبدالله
و علی الارواح التی حلت بفنائک
علیک منی سلام الله
ابداً ما بقیت و بقی اللیل و النهار
و لا جعله الله آخر العهد منی لزیارتکم
السلام علی الحسین و علی علی بن الحسین
و علی اولاد الحسین و علی اصحاب الحسین

December 2011

Monthly Magazine

मरयम

मोमिनों के दिलों में शहादते हुसैन[अ0] की वजह से एक हरारत है जो कभी ठंडी नहीं होगी।

(रसूले इस्लाम[अ0])

इस महीने आप पढ़ेंगी...

हुसैनी मक़सद	6
मियां-बीवी की मोहब्बतः एक्चुअल या वर्चुअल	8
करबला की औरतें	10
गुस्सा	12
एक अहम फ़रीज़ा	14
एक करबला से मौला हम भी गुज़र रहे हैं	15
अलमदारी की तारीख़	17
कश्ती पर मातम	18
पालने वाला	20
करबला की इबरतें	22
इमाम सज्जाद[अ0]	25
गुलों में रंग भरे...	26
औरत पाकीज़ा हक़ों की तलाश में नापाक इरादों की शिकार	28
बच्चे झूठ क्यों बोलते हैं?	31
सज़ा	33
करबला	36
हज़रत ज़ैनब[अ0]: तस्वीरे फ़ातिमा[अ0]	39
हुसैन[अ0]? कौन हुसैन[अ0]?	42

Editor
M. Hasan Naqvi

Editorial Board
M. Fayyaz Baqir
Akhtar Abbas Jaun
Qamar Mehdi
Ali Zafar Zaidi

Managing Editor
Abbas Asghar
Shabrez

Executive Editor
Fasahat Husain

Assist. Exec. Editor
M. Aqeel Zaidi

Contributors
Imtiyaz Abbas
Rizwan
Azmi Rizvi
Batool Azra Fatima
M. Mohsin Zaidi
Tauseef Qambar

Graphic Designer
imagine graafix
Siraj Abidi
9839099435

Typist
S. Sufyan Ahmad

'मरयम' में छपे सभी लेखों पर संपादक की रज़ामंदी हो, यह ज़रूरी नही है।
'मरयम' में छपे किसी भी लेख पर आपत्ति होने पर उसके खिलाफ़ कारवाई सिर्फ़ लखनऊ कोर्ट में होगी और 'मरयम' में छपे लेख और तस्वीरें 'मरयम' की प्रॉपर्टी हैं।
इसका कोई भी लेख, लेख का अंश या तस्वीरें छापने से पहले 'मरयम' से लिखित इजाज़त लेना ज़रूरी है। 'मरयम' में छपे किसी भी कंटेंट के बारे में पूछताछ या किसी भी तरह की कारवाई प्रकाशन तिथी से 3 महीने के अंदर की जा सकती है। उसके बाद किसी भी तरह की पूछताछ और कारवाई पर हम जवाब देने के लिए मजबूर नहीं हैं।
संपादक 'मरयम' के लिए आने वाले कंटेंट्स मे ज़रुरत के हिसाब से तबदीली कर सकता है।

Printer, publisher & Proprieter S. Mohammad Hasan Naqvi printed at Swastika Printwell Pvt. Ltd., 33, Cant. Road, Lucknow and published from 234/22 Thavai Tola, Victoria Street, Chowk, Lucknow 226003 UP-India

Contact No.: +91-522-4009558, 9956620017 (Lucknow), +91-9892393414 (Mumbai)
Email: maryammonthly@gmail.com

الامام صادقؑ:

كان عمنا العباس نافذ البصيرة، صلب الايمان
جاهد مع ابى عبد الله الحسين، ابلى بلاء حسنا ومضى شهيدا

इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] :

हमारे चचा अब्बास[अ०] गहरी बसीरत वाले और मज़बूत ईमान वाले थे। आपने इमाम हुसैन[अ०] के साथ जिहाद किया और मुसीबतों से ख़ूबसूरती के साथ निकल गए और शहीद हो गए।

■ रबाब फ़ातिमा
कानपुर

मुहर्रम हमारे सामने है, यह वह महीना है कि जिसका सीधा ताल्लुक़ हम से है यानी मुलसमानों, शियों बल्कि इंसानों से। इस महीने में रसूल[अ०] के नवासे इमाम हुसैन[अ०] ने अपने आपको, अपने घर वालों व चाहने वालों को क़ुर्बान करके इस्लाम और इंसानियत के लिए एक अज़ीम क़ुर्बानी दी थी।

जगह-जगह इमाम की शहादत की याद में मजलिसें, मातम और नौहे हो रहे हैं, हर हुसैन का चाहने वाला ग़मग़ीन है। उसकी नम आँखें और बदन पर स्याह लिबास इस बात की दलील है।

यह सब क्यों है? इमाम की याद और उनकी मोहब्बत ही में तो है। मोहब्बत दलील चाहती है सिर्फ़ दावा नहीं! इसलिए आज हम इमाम हुसैन और उनकी शहादत के मक़सद के बारे में बात करेंगे।

इमाम हुसैन[अ०] का वुजूद हमें इस्लाम के साथ मज़बूती से जोड़ता है क्योंकि इस्लाम को परवान हुसैन ही ने चढ़ाया है। कभी सोचा है, क्या इमाम हमारी ख़ाली महफ़िलों और मजलिसों से राज़ी हो जाएंगे? हमारे ख़याल से शायद नहीं क्योंकि हमने हुसैनी मक़सद को दिल के एक कोने में जगह दे रखी है जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए यानी हमारे पूरे दिलो दिमाग़ के ऊपर हुसैनी मक़सद छाया हुआ होना चाहिए। आज हमारा दावा है कि हम अली[अ०] के शिया हैं और हुसैनी हैं। ज़ाहिर सी बात है कि हम इमाम के चाहने वाले हैं, मातमदार हैं, हुसैन पर गिरया करते हैं। अगर हम वाक़ई चाहने वाले होते तो हमें सिर्फ़ हुसैन के गले पर कुंद ख़ंजर ही चलता नज़र न आता, हुसैन का सजदे में झुका हुआ सर भी दिखाई देता। अगर हक़ीक़त में हमें हुसैन का सजदे में झुका सर नज़र आता तो आज हमारे सर नमाज़ों के वक़्त सजदे में नज़र आते। यह दुनिया का हर मुसलमान जानता है कि इस्लाम बहुत क़ीमती मज़हब है और बहुत क़ुर्बानियों के बाद हम तक पहुँचा है। हम भी इस बात को मानते हैं कि इमाम ने बहुत सी क़ुर्बानियाँ देकर हमें यह इस्लाम दिया है। ज़रा सोचिए! जिसे हम चाहते हैं अगर वह हमको कोई तोहफ़ा दे और वह तोहफ़ा क़ीमती भी हो तो हम उसे संभाल कर रखते हैं, एक अच्छी जगह पर रखते हैं ताकि वह ख़राब न हो और जब कभी तोहफ़ा देने वाला उस तोहफ़े को देखता है तो ख़ुश होता है कि उसने वैसा ही रखा है जैसा हम ने दिया था। तो फिर आइए हम अपने आप से सवाल करें कि क्या हम ने इस्लाम को वैसा ही रखा है जैसा हमको दिया गया था?

क्या वाक़ई हमारे घर की शादियों में इस्लाम नज़र आता है, क्या हमारे घर के माहौल में इस्लाम नज़र आता है? यहाँ तक कि हर छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कामों में इस्लाम नज़र आता है? इल्मी तरक़्क़ी में इस्लाम नज़र आता भी है कि नहीं? हक़ीक़त यह है कि आज हमारे हर काम में इस्लाम की तस्वीर धुंधली और गर्द से ढकी हुई नज़र आती है। क्या यही सूरत उस इस्लाम की है जो हमें इमाम ने दिया था? क्या हम ने इस्लाम को वाक़ई संभाल कर रखा कि जिसे देखकर हमारे इमाम ख़ुश हों। यह दौलत से नहीं बल्कि ख़ून देकर मिला है। हर शिया का कहना है इस्लाम को हुसैन ने ख़ून से सींचा है बल्कि यह कहना सही होगा कि इस्लाम को हुसैन[अ०] ने ख़ून के साथ अपना सहारा, आँखों का नूर, दिल का सुकून व चैन, अपनी मोहब्बत और बाप की जुदाई के ग़म में एक बेटी की तड़प देकर सींचा है। हमारा कहना है कि हम इमाम को चाहते हैं और उन पर रोते हैं। बेशक हम हुसैन[अ०] के ग़म में आँसू बहाते हैं। यह मोहब्बत है। रोना मोहब्बत ही का नाम नहीं बल्कि इंसानियत का भी तक़ाज़ा है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जिसे हम जानते भी नहीं और न ही मोहब्बत करते हैं फिर भी उसके ग़म में रो पड़ते हैं तो फिर हुसैन का ग़म जिसकी कोई हद नहीं। हम बताना चाहते हैं कि मोहब्बत का एक नज़रिया यह भी है जिसको हम चाहते हैं उस जैसा बनने की कोशिश भी करते हैं, उसकी पसंद नापसंद का पूरा-पूरा ध्यान रखते हैं, वही काम करते हैं जो उसे पसंद हो, वह काम नहीं करते जिससे वह नाराज़ हो... अब इसके बाद हमनें कभी यह सोचा है कि इमाम हमारी किस बात से ख़ुश हैं और किस बात से नाराज़। अगर हम इमाम को चाहते हैं तो हम भी उनकी पसंद नापसंद का

ख़याल रखेंगे।

ख़ुदा न करे! कहीं हम ग़लती से बातिल का साथ देकर यज़ीदियत के सर को ऊपर उठाने की कोशिश तो नहीं कर रहे हैं। सोचिए... आइए ज़रा हम दिल की गहराइयों से सोचें कि इमाम हुसैन पर अस्रे आशूरा हमलों पर हमले हो रहे हैं, ज़ख़्मों पर ज़ख़्म खाए हैं फिर भी नमाज़े अस्र अदा कर रहे हैं। क्या यह इबादत कम है कि इस्लाम की ख़ातिर घर को लुटा दिया? क्या नमाज़ के वक़्त आप पर हमले होना बंद हो गए? लेकिन तारीख़ में ऐसा नहीं मिलता कि ऐसा हुआ हो। न हमलों पर हमले होना बंद हुए और न तीरों और तलवारों की बारिश कम हुई और न ही ज़ालिमों ने नमाज़ की मोहलत दी फिर भी आप ने नमाज़े अस्र अदा की। इमाम का यही जवाब आएगा कि जब इस्लाम हमारे लिए इतना बढ़कर है कि उस पर अपना सब कुछ लुटा दिया तो फिर मेरे लिए वह कितना बुलंद होगा जिसने यह दीन इस्लाम नाज़िल किया है, जिसका सजदा हमारे लिए वाजिब है। तो फिर क्यों हमें नमाज़ का वक़्त याद नहीं रहता? क्यों हम नमाज़ क़ज़ा करते हैं? अगर हम इमाम के सच्चे चाहने वाले हैं तो हमें हुसैनी मक़सद को याद रखना चाहिए कि हुसैनी मक़सद क्या है? कभी ऐसा नहीं लगता कि यह अज़ान की आवाज़ें हमारी रूह को झिंझोड़ रहीं हों और अली अकबर की याद दिला रही हों। कहीं हुसैन का आशूर की सुबह अली अकबर से अज़ान दिलाने का मक़सद यह तो नहीं था कि हमारी क़ौम का हर नौजवान अली अकबर की अज़ान को याद रखे और मजलिसो मातम, जो हुसैनी पैग़ाम और मक़सद को बताने का ज़रिया है, सिर्फ़ उसी में मसरूफ़ रहे और असल मक़सद को सिरे से भुला दे! बल्कि मजलिसें नमाज़ सिखाने और इस्लामी अहकाम बताने का ज़रिया हैं इसलिए मजलिसें ख़ूब हों, मातम ख़ूब किया जाए लेकिन हुसैन[अ०] और उनकी माँ यही चाहते हैं कि जब नमाज़ का वक़्त हो तो पहले उसे अदा करो! इस्लामी अहकाम की पाबंदी करना ही इस अज़ादारी का पहला मक़सद है।

अगर हम हुसैनी हैं तो ऐसा नहीं करेंगे कि अज़ाख़ाने आबाद रहें और मस्जिदें वीरान बल्कि ऐसा करने की कोशिश करेंगे कि हमारे अज़ाख़ाने और मस्जिदें दोनों आबाद रहें।

सलाम

■ मोहसिन नक़वी

हुसैन की दुख भरी कहानी तमाम दुनिया सुना करेगी
जो रो पड़ेगा उसे जहाँ में अली[अ०] बेटी की दुआ करेगी

अजीब माँ है जो छः महीनों का लाल क़ुरबान कर रही है
कभी जो असग़र की याद आई, ''रबाब'' ज़िंदाँ में क्या करेगी

हुसैन[अ०] 'बाक़िर' से कह रहे थे मेरी सकीना[अ०] को साथ रखना
सफ़र के हर मोड़ पर यह बच्ची तुझे दिलासे दिया करेगी

नबी[अ०] के रौज़े पे एक ज़ईफ़ा जनाबे ज़ैनब[अ०] से कह रही थी
कि बादे अब्बास[अ०] हर क़दम पर मेरी रुक़ैय्या वफ़ा करेगी

हुसैन[अ०] की लाशे बेकफ़न से यह कह के ज़ैनब जुदा हुई है।
जो तेरे मक़तल में बच गया है वह काम मेरी रिदा करेगी।

मियां-बीवी की मोहब्बत एक्चुअल या वर्चुअल

■ उज़मा नक़वी

यह बात कई बार कही जा चुकी है कि मियाँ-बीवी के दरमियान मोहब्बत का रिश्ता होता है, मोहब्बत जितनी ज़्यादा होगी रिश्ता उतना ही मज़बूत होगा।

मगर कभी-कभी मोहब्बत की कुछ अलग तरह की क़िस्में भी समाज में देखने को मिलती हैं।

जैसे बच्चा बड़ा होकर स्कूल जाने लाएक़ हो जाए तो माँ यह चाहती है कि बच्चा स्कूल जाए मगर बच्चा न जाने के लिए मचलता है। ऐसे में माँ अगर अपनी मोहब्बत की वजह से बच्चे को स्कूल जाने से रोक ले तो हर इंसान यही कहेगा कि यह मोहब्बत नहीं बल्कि दुश्मनी है। मोहब्बत तो यह है कि बच्चा कितनी भी ज़िद करे मगर माँ उसको हर हाल में स्कूल भेजे। क्योंकि अगर बच्चा स्कूल नहीं गया तो उसकी ज़िंदगी बर्बाद हो जाएगी और अगर चला गया तो उसकी ज़िंदगी संवरने लगेगी।

इस से यह समझ में आता है कि असली मोहब्बत वह होती है जो तरक़्क़ी, कामयाबी और इस्लाह के रास्ते पर इंसान को लगा दे।

कभी-कभी कुछ बीवियाँ अपने शौहरों से ऐसी मोहब्बत करती हैं कि जो उनके लिए नुक़सानदेह साबित होती है।

जैसे दाढ़ी मत रखिए अच्छी नहीं लगती, आफ़िस से इतने थके-मांदे आए हैं अब मजलिस में मत जाईए, या सुबह-सुबह नमाज़ के लिए क्यों उठ जाते हैं, दिन में आफ़िस में नींद आएगी, कोई कुछ भी करे आप से क्या मतलब वग़ैरा-वग़ैरा और शौहर भी नादान बच्चों की तरह सारी बातें मानते जाते हैं।

सच्ची मोहब्बत

यह आप अपने शौहर से मोहब्बत नहीं कर रही हैं बल्कि जिसको आप मोहब्बत समझ रही हैं यह असल में दुश्मनी है। मोहब्बत तो उसको कहते हैं जो इंसान को उसके मक़सद और कमाल तक पहुँचा दे।

हर औरत को अपने शौहर की ज़िंदगी पसंद होती है मगर करबला की औरतों को अपने शौहर की हमेशा बाक़ी रहने वाली ज़िंदगी पसंद थी क्योंकि उनको मालूम था कि इंसान की ज़िंदगी का मक़सद इसी में है।

करबला की औरतें भी आप की ही तरह की औरतें थीं, वह भी अपने शौहर और बच्चों से मोहब्बत करती थीं, उनको अपने शौहर और बच्चों से कोई दुश्मनी नहीं थी, फिर क्या बात है कि सारी औरतें अपने शौहर और बच्चों की लम्बी उम्र की दुआ करती हैं मगर करबला की औरतें उनको मरने के लिए तैयार कर रही थीं, उनको ख़ुशी-ख़ुशी ख़ुदा हाफ़िज़ कह रही थीं और उनकी शहादत की ख़बर पर शुक्र का सजदा कर रही थीं।

अपने बच्चों को भूखा-प्यासा देखती रहीं मगर यज़ीदियों से मदद न माँगी बल्कि हुसैन[अ] पर क़ुर्बान होने का सबक़ देती रहीं।

क्या उनके सीने में दिल नहीं था, या उनमें आपकी तरह मामता नहीं थी, क्या वह अपने शौहर और बच्चों से मोहब्बत नहीं करती थीं?

ज़िम्मेदारी का एहसास

ऐसा नहीं है। उनमें भी यह सब था और उन सब के साथ ज़िम्मेदारी का एहसास भी था और करबला के मिशन को कामयाब करने का जज़्बा भी

था और इमाम हुसैन[अ] के मक़सद की पहचान भी थी। इसलिए वह सिर्फ़ अपनी ज़िम्मेदारी को पूरा कर रही थीं।

जिस तरह एक समझदार माँ अपने सीने पर पत्थर रख कर अपने रोते हुए बच्चे के बहते आँसुओं को बर्दाश्त करके ख़ुशी-ख़ुशी उसको स्कूल भेज ही देती है क्योंकि स्कूल जाने और न जाने दोनों का नतीजा उसकी निगाहों के सामने होता है।

इस तरह से करबला की औरतों के सामने भी इमाम हुसैन[अ] की नुसरत करने या न करने, दोनों का नतीजा था। उन्हें मालूम था कि कामयाबी इसी में है कि अपनों को क़ुर्बान कर दिया जाए।

अपनी फ़ैमिली से बेपनाह मोहब्बत करने वाली मेरी बहनो! ज़रा सीने पर हाथ रखकर सोचिए कि आप अगर करबला में होतीं तो आप क्या करतीं, अपने शौहर और बच्चों को बचा लेतीं या इमाम पर क़ुर्बान कर देतीं। हमें मालूम है कि इस वक़्त आप यही सोच रही होंगी कि यह कैसे मुमकिन है कि दीन की नुसरत का वक़्त हो और हम अपने शौहर और बच्चों को बचा लें। बल्कि शायद आपके दिल में यह एहसास पैदा हो गया हो कि ... काश हम भी वहाँ होते।

इमाम ज़माना[अ] की नुसरत इमाम हुसैन[अ] की नुसरत है

कोई बात नहीं आप करबला में नहीं पहुँच पाईं। इसका बिल्कुल अफ़सोस मत कीजिए क्योंकि इमाम हुसैन[अ] क़त्ल कर दिए गए मगर उनका मिशन ज़िंदा है। इमाम हुसैन[अ] शहीद हो गए मगर उनका मक़सद हमारे दरमियान बाक़ी है क्योंकि इमाम ने अपना मक़सद बताया है, "क्या तुम नहीं देख रहे कि हक़ पर अमल नहीं किया जा रहा है और बातिल से रोका नहीं जा रहा है। ऐसे हाल में मौत को कामयाबी और ज़ालिमों के साथ ज़िंदा रहने को ज़िल्लत की ज़िंदगी समझता हूँ।" और जब मिशन और मक़सद बाक़ी है तो नुसरत भी बाक़ी है।

अगर आप अपने शौहर और बच्चों को इमाम हुसैन[अ] का नासिर नहीं बना पाईं तो इमाम ज़माना[अ] का नासिर बना सकती हैं क्योंकि इमाम हुसैन[अ] के इंक़ेलाब को इमाम ज़माना[अ] ही पूरा करेंगे। इमामे ज़माना का सहाबी बनने के लिए इमाम हुसैन[अ] के अस्हाब के जैसा बनना पड़ेगा। हाँ! यह मुमकिन भी है और आप ऐसा कर भी सकती हैं। बस आपको ज़रा सी मुश्किलें बर्दाश्त करना होंगी जो करबला वालों की मुश्किलों के मुक़ाबले में कुछ भी नहीं हैं। ऐसे में आप यह न देखें कि आपको क्या पसंद है बल्कि यह देखें कि दीन आप से क्या चाहता है। यही करबला का पैग़ाम है और यही आपके लिए बेहतर है। क्योंकि ख़ुदावन्दे आलम क़ुरआन में फ़रमाता है, **"मुमकिन है कि कोई चीज़ तुमको पसंद न हो जबकि इसी में तुम्हारे लिए भलाई हो, और मुमकिन है कि कोई चीज़ तुमको पसंद हो जबकि इसमें तुम्हारे लिए शर हो।"** (सूरए बक़रा/ 214)

मोहब्बत का नतीजा

मगर इसके लिए पहले आपको ख़ुद को करबला की औरतों जैसा बनाना पड़ेगा। जिसमें आप की वर्चुअल और हक़ीक़ी मोहब्बत के बीच ज़बरदस्त जंग होगी। अगर वर्चुअल मोहब्बत कामयाब हो गई तो आप भी आम औरतों की तरह अपने शौहर और बच्चों के आराम और दुनियादारी की ज़्यादा फ़िक्र करेंगी और उनकी दीनदारी की कम। लेकिन अगर एक्चुअल मोहब्बत कामयाब हो गई तो करबला की औरतों की तरह आप भी दीन और दीनदारी के लिए हर तरह की क़ुर्बानी देने में नहीं झिझकेंगी।

लेकिन अगर आप अपने शौहर और बच्चों की दीनदारी में मदद नहीं करतीं तो इसका मतलब यही हुआ कि आप यह नहीं चाहती हैं कि आपका शौहर या बच्चा इमामे ज़माना[अ] का नासिर बने।

मोहर्रम वह अज़ीम महीना है कि जिसमें हम इमाम हुसैन[अ] के मक़सद को समझकर उनके रास्ते पर चलते हुए इमाम ज़माना तक पहुँचने की कोशिश कर सकते हैं।

अगर इस महीने में हमें इमाम हुसैन[अ] का मिशन समझ में आ गया तो मजलिस, जुलूस, अज़ादारी और मोहर्रम सब कुछ कामयाब, लेकिन अगर हमको इमाम का मिशन ही समझ में न आए तो पूरी ज़िंदगी में हम ने क्या किया?

एक इम्तेहान

हम लोग दस, बीस या पचास साल से अज़ादारी कर रहे हैं। आज आप पहले अपना और फिर अपने बच्चों या छोटे भाईयों का इम्तेहान लीजिए कि इतने साल मोहर्रम करके उन्होंने क्या सीखा। इमाम हुसैन[अ] का पैग़ाम, जनाबे ज़ैनब का कोई ख़ुतबा या इमाम सज्जाद का कोई क़ौल। अगर नहीं सीखा तो कैसा मोहर्रम और किसकी अज़ादारी? और ऐसे में अभी यह इरादा कीजिए कि बामक़सद मोहर्रम को बेमक़सद नहीं होने देंगे।

और अज़ादारी जनाबे ज़ैनब के तरीक़े से करेंगे।

करबला की औरतें

■ डॉ. हिना बानो तबातबाई
लेक्चरर शिया पी.जी. कालेज, लखनऊ

करबला का वाक़ेआ हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] की तारीख़ी जीत के साथ क़यामत तक याद किया जाएगा।

इस बात को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता कि इस वाक़ेए में जगह-जगह हमें औरतों के बेहतरीन किरदार व अमल के नमूने मिलते हैं और यही वजह थी कि हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] ने अपने इस मिशन में औरतों को भी अपने साथ रखा।

औरतों में जो नाम सबसे ऊपर आता है वह जनाबे फ़ातिमा ज़हरा[स०] का है। रसूले अकरम[स०] की इकलौती बेटी जिसने सिर्फ़ 18 साल की छोटी सी ज़िंदगी में एक औरत की शख़सियत के जितने पहलू हो सकते हैं उनकी मुकम्मल तस्वीर पेश कर दी।

हालांकि वाक़ेए करबला में जनाबे फ़ातिमा ज़हरा[स०] नहीं थीं, लेकिन एक कामयाब माँ की हैसियत से आपका रोल करबला के वाक़ेए की रूह है। हुसैन[अ०] इब्ने अली[अ०] किस माँ की गोद के पले हैं? हर क़दम पर, हर अदा में और हर फ़ैसले में माँ की तरबियत नज़र आ रही है। एक माँ अपने बच्चे की ज़ेहनी तरबियत करती है और माँ के मिज़ाज का पूरा-पूरा असर उसकी औलाद के किरदार पर पड़ता है।

अगर माँ में ग़ैरत का जज़्बा है तो औलाद को भी वही तालीम देगी।

अगर माँ में शुजाअत का जज़्बा है तो बच्चे को भी बहादुर बनाएगी।

अगर माँ हक़ परस्त है तो औलाद को भी हक़ पर चलने वाला बनाएगी।

अगर माँ में सब्र और बर्दाश्त का जज़्बा है तो बच्चे को भी सब्र सिखाएगी।

अगर माँ रहमदिल है तो वह अपनी औलाद को ज़ालिम नहीं बनने देगी।

अगर माँ ख़ादिमों और ग़रीबों के साथ हमदर्दी रखने वाली है तो बच्चे को भी सरकशी की तालीम नहीं देगी।

अगर माँ दीनदार है तो बच्चा भी दीन पर जान क़ुर्बान कर देने वाला होगा।

इसके उलट अगर यह सारी सिफ़तें माँ में न हों और तरबियत का सलीक़ा न हो तो वह अपनी अच्छाइयाँ अपनी औलाद में ट्रांसफ़र नहीं कर सकती।

वाक़ेए करबला में हुसैन एक ऐसी शख़सियत का नाम है जिसकी परवरिश फ़ातिमा ज़हरा[स०] की गोद में हुई। बातिल की ताक़त के आगे हक़ का परचम बुलंद करने वाली ज़ात को माँ की तरबियत के आइने में देखा जाता है और दुनिया कहती नज़र आती है कि यह फ़ातिमा ज़हरा[स०] की गोद का पला है और सामने बातिल यानी यज़ीद को उसकी माँ के किरदार के साथ याद किया जाता है।

करबला की औरतों में दूसरा नाम जो वाक़ेए करबला पर पूरी तरह छाया हुआ है वह फ़ातिमा ज़हरा[स०] की बड़ी बेटी जनाबे ज़ैनब का है। यह बात आम है कि बेटी माँ की शख़सियत का आइना होती है। इस तरह से जनाबे ज़ैनब का जो किरदार वाक़ेए करबला में सामने आता है एक बेहतरीन औरत का किरदार है।

हद से ज़्यादा भाई से मोहब्बत के बावजूद शौहर की मर्ज़ी के बग़ैर सफ़र पर नहीं जा रही हैं और जब तक बाप ने हाँ नहीं कर दी बेटों को साथ नहीं लिया। जब भाई के साथ चली तो एक जाँनिसार बहन बनकर। अपनी जान से ज़्यादा हक़ का और भाई का ख़याल है। अली की बेटी हैं मगर कनीज़ के साथ वही माँ का अंदाज़ है। दीनदारी ऐसी कि अगर दीन पर वक़्त आ गया तो बेटे ख़ुदा की राह में क़ुर्बान कर दिए।

अस्रे आशूर जनाबे ज़ैनब ने ज़बरदस्त सब्र और हिम्मत दिखाई है।

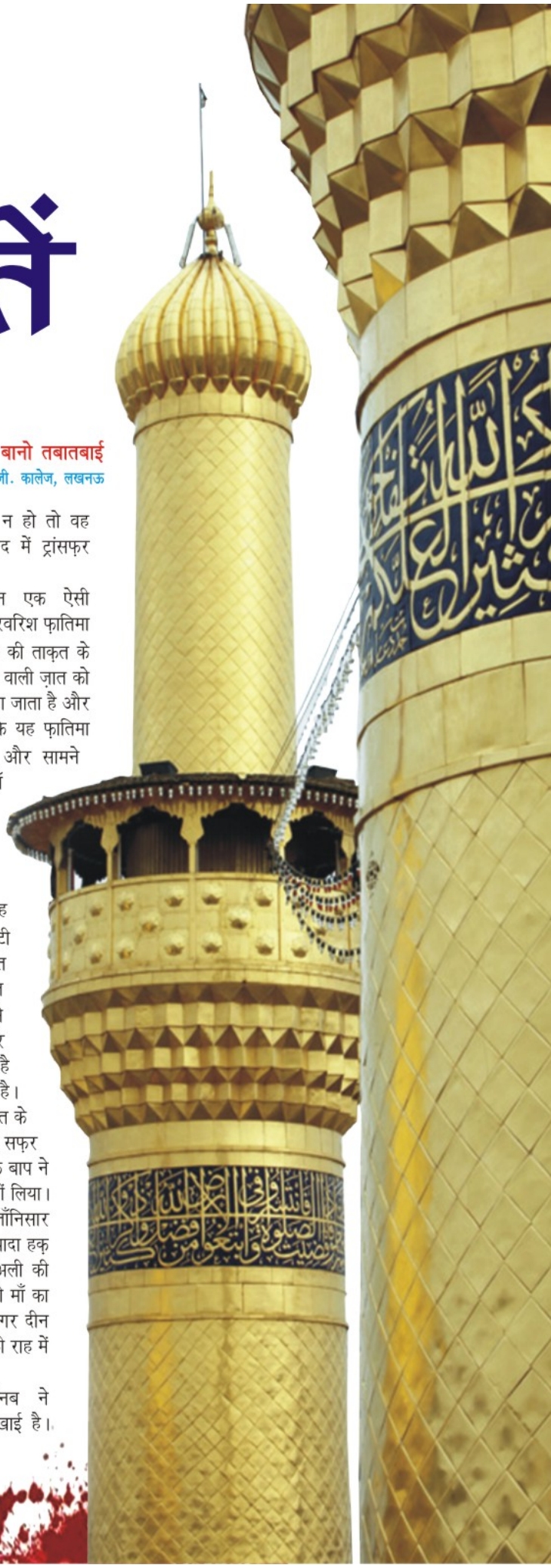

जब ख़ेमों में आग लगी हुई थी आपने हर बीबी का हौसला बढ़ाया है। अपनी पीठ पर उठाकर इमाम ज़नुलआबेदीन[अ॰] को जलते हुए ख़ेमों से बाहर निकाला है। ज़ैनब की हिम्मत अल्लाहो अकबर, ज़ैनब का सब्र अल्लाहो अक्बर।

इमाम हुसैन[अ॰] ने अपने बाद क़ाफ़ले की ज़िम्मेदारी जनाबे ज़ैनब को सौंप दी जो कोई आम बात नहीं है। यह वक़्त के इमाम का फ़ैसला था क्योंकि आप जनाबे ज़ैनब की शख़सियत को अच्छी तरह पहचानते थे ख़ुद इमाम को जनाबे ज़ैनब की सलाहियतों पर पूरा भरोसा था या यह कहा जाए कि जिस माँ की गोद में हुसैन पले थे उसी माँ ने ज़ैनब की भी परवरिश की थी और अस्रे अशूर के बाद करबला की तारीख़ में जनाबे ज़ैनब की सारी ख़ूबियाँ व सलाहियतें सामने आ जाती हैं। हर-हर क़दम पर सब्र और बर्दाश्त, समझबूझ और अक़्लमंदी के साथ-साथ हौसले की बुलंदी और शुजाअत आपके ख़ुतबों व तक़रीरों से साबित है।

उन क़यामत के हालात में जिस तरह आपने औरतों और बच्चों की हिफ़ाज़त की है वह दर्स भी हमें जनाबे ज़ैनब[स॰] के किरदार से मिलता है। किसी शायर ने कहा है:

ज़हरा के बाद सानिए ज़हरा मिलीं मगर
ज़ैनब[अ॰] के बाद सानिए ज़ैनब नहीं मिली

वाक़ेए करबला में इमाम हुसैन[अ॰] के साथ हज़रत अब्बास[अ॰] की वफ़ा का ज़िक्र बहुत होता है। क्या हम भूल सकते हैं जनाबे उम्मुल बनीन और उनके किरदार को? जिसकी माँ फ़ातिमा ज़हरा[स॰] की चौखट पर सजदा करे उसके बेटे की वफ़ादारी कैसी होगी? माँ ने अदब और तहज़ीब इस तरह सिखाई थी कि जनाबे अब्बास कभी भी भाइयों और बहनों में नज़र उठाकर के बात नहीं करते थे और वही अदब उनके छोटे भाइयों का उनके लिए था, जो हुक्म दे दिया सर आँखों पर। आप ने अपने ३ छोटे भाईयों को पहले जंग के लिए भेजा जो शहीद हुए। यह सारी सिफ़तें और फ़रमाबरदारियाँ माँ की देन थीं। हज़रत अब्बास की माँ तो करबला में नहीं थीं मगर उम्मुल बनीन के फूलों से वाक़ेए करबला महकता रहेगा।

आपकी बेटी यानी जनाब मुस्लिम की बीवी, जिनके सब्र पर हमारी जानें क़ुर्बान! दो मासूम बच्चे जो बाप के साथ चले गए थे शहादत के वक़्त क़ातिल से नमाज़ की मोहलत माँगते हैं। अल्लाहो अक्बर! नमाज़ से इतनी मोहब्बत! दुनिया पूछेगी इन बच्चों की माँ कौन थी? क्यों न हो उम्मुल बनीन की बेटी है, अब्बास की बहन हैं जो बच्चों से मायूस हो जाने के बाद बेवगी के आलम में दो और बेटों को जंग में भेजने के लिए तैयार है। यह माँ का ही हुक्म था जो कमसिन बच्चों ने पूरा किया और शहीद हुए।

सफ़र में और सर्दी, गर्मी के अलावा भी बहुत से हालात इंसान को परेशान कर देते हैं मगर हमें किसी बीबी की अपने ज़ाती हक़ के लिए कोई आवाज़ सुनाई नहीं देती बल्कि हर बीबी क़ुर्बानी देने में दूसरी बीबी से आगे बढ़ जाना चाहती है।

यह है दीनदारी का जज़्बा। हबीब इब्ने मज़ाहिर की बीवी का यह जुमला "यह मेरी चूड़ी पहनकर घर में बैठो मैं ख़ुद जाऊँगी अपने आक़ा हुसैन की नुसरत करने" क़यामत तक करबला की तारीख़ से नहीं निकाला जा सकता। या वहबे कल्बी की माँ का बहादुरी भरा अमल, जब उसने वहब का सर उठाकर गोद में लिया, प्यार किया, जवान बेटा था बूढ़ी माँ थी मगर एक बार फिर यह कहकर सर को मैदान में फेंक दिया कि हम जो ख़ुदा की राह में दे देते हैं उसे वापस नहीं लेते। क्यों न ऐसी माँ का बेटा वहब जैसा बहादर हो, माँ का फ़रमाबरदार, नेक और हक़ को पहचानने वाला हो।

एक औरत के किरदार का वह कौन सा पहलू है जिसका असर वाक़ेए करबला के आईने में मौजूद न हो। करबला की औरतों के किरदार में इस्लामी शरीअत का अमली नमूना नज़र आता है। शर्मो हया का वह दर्स हमें मिलता है कि जब जनाबे ज़ैनब ने चौथे इमाम से सवाल किया कि बेटा बताओ जलकर मर जाएं या बे-रिदा ख़ेमों से बाहर निकलें। फिर सर के बालों से अपने चेहरों का पर्दा करना क्या हमारे लिए पर्दे की तालीम देना नहीं है? आज के इस माहौल में जब अहलेबैत[अ॰] के चाहने वालों में से कुछ के सरों पर चादर नज़र आ रही है, यह करबला की औरतों का ही सदक़ा है कि हम फ़ख़्र के साथ हिजाब करते हैं।

इसके अलावा भूख व प्यास के साथ मुसीबतों के हुजूम में भी ख़ुदा के बताए रास्ते पर चलते रहना, शौहर की फ़रमाबरदारी, बुज़ुर्गों का एहतेराम, बच्चों पर रहम, हालात से समझौता करना और दूसरे मौक़ों पर अल्लाह की राह में साबिर व शाकिर रहने का दर्स हमें करबला की औरतों के किरदार से मिलता है।

हिजाब

वाक़ेए करबला का दर्दनाक पहलू सैदानियों के सरों से रिदाओं का छिन जाना है यह यज़ीद का अमल था जो सरासर इस्लाम के ख़िलाफ़ था और अहलेबैत[अ॰] का बेपर्दगी के आलम में अपने चेहरे को बालों से छुपाना इस्लाम था। बात साफ़ है कि बेपर्दगी बातिल और यज़ीदियत का अमल है और हिजाब को रखना जनाबे ज़ैनब का मिशन है। अगर हुसैन[अ॰] की मोहब्बत का दावा करने वाली औरतें बेवजह बेपर्दा घूम रही हैं तो वह यह साबित कर रही हैं कि यज़ीद अपने शैतानी मिशन में कामयाब हो गया।

हम ने पर्दे को छोड़ दिया जिसकी शुरुआत यज़ीद ने की थी। वह भी अपनी औरतों के लिए नहीं बल्कि अहलेबैते रसूल[स॰] को मआज़ल्लाह ज़लीलो रुस्वा करने के ख़याल से।

यह बात साबित हो गयी कि यज़ीद जैसा बदकार व बदमाश भी यह पसंद नहीं करता था कि उसकी बीवी बेटियाँ और बहनें नामहरम मर्दों के सामने आएं और आज अली इब्ने अबी तालिब[अ॰] के चाहने वाले अपनी बहू बेटियों और बीवियों को नामहरम मर्दों के लिए तमाशा बनाए हुए हैं।

हमारी बेपर्दगी हमारी शहज़ादी की पीठ पर यज़ीद का एक और ताज़ियाना है। यह ख़ुद जनाबे ज़ैनब का बयान है। हमारी शहज़ादी बेपर्दगी को अपनी हार कहती हैं। क्या हम चाहते हैं कि यज़ीदियत कामयाब हो और हमारी शहज़ादी ज़ैनब अपने मिशन में हार जाएं?

हमारे सरों पर रिदाएं यज़ीदियत के मुँह पर एक ज़बरदस्त तमाचा हैं। ●

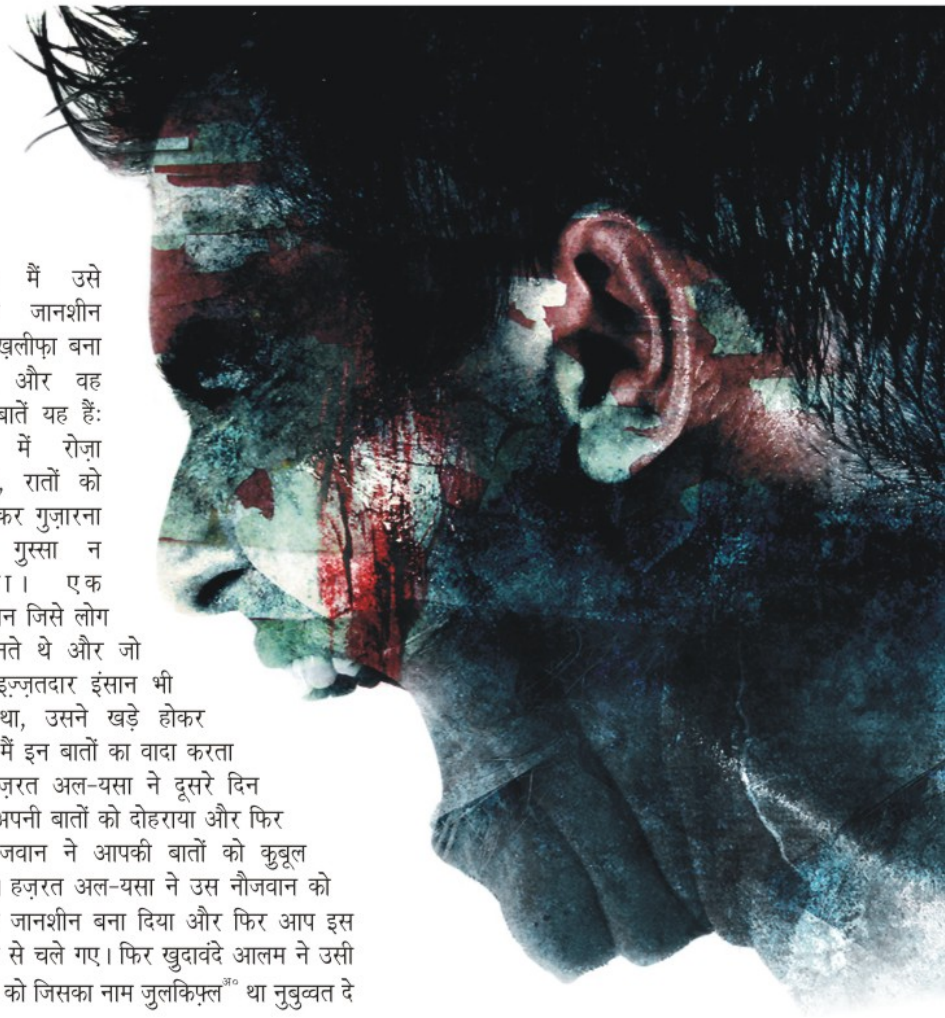

ग़ुस्सा

■ मौलाना मीसम ज़ैदी

जो ख़ुदा की निगाहों में महबूब बनना चाहता है उसे गुस्से से बचना पड़ेगा। गुस्सा इंसान की ज़िंदगी में ऐसी बुरी चीज़ है जिसे दुनिया का हर इंसान अच्छी तरह समझता है। गुस्से के वक़्त इंसान की अक़्ल सही काम नहीं करती। गुस्से से ख़ुद को बचाना मुत्तक़ी लोगों की सिफ़त बताई गई है। क़ुरआन मजीद में गुस्से को पी जाने वालों की तारीफ़ की गई है और गुस्से को बुरी सिफ़त बताया गया है।

इमाम जाफ़र सादिक़[अ०] ने फ़रमाया है, "गुस्सा हर ख़राबी की कुंजी है।"

इंसान कभी-कभी नेचुरल तौर पर गुस्से से दोचार होता है लेकिन गुस्से को पी जाने वाले ही कामयाब हुआ करते हैं। इमाम मूसा काज़िम[अ०] फ़रमाते हैं, "जो शख़्स अपने गुस्से को ज़ाहिर करने का मौक़ा रखने के बाद भी गुस्सा पी जाता है ख़ुदावंदे आलम क़यामत के दिन उसके दिल को अमन और ईमान से भर देगा।"

गुस्सा इंसान के ईमान को ख़राब कर देता है। रसूले अकरम[स०] फ़रमाते हैं, "जिस तरह सिरके से शहद ख़राब हो जाता है इसी तरह गुस्सा ईमान को तबाह कर देता है।"

ख़ुदा के पैग़म्बर हज़रत अल-यसा[अ०] का जब आख़िरी वक़्त क़रीब आया तो आप ने चाहा कि किसी को अपना नाएब बना दें। आपने लोगों को जमा करके फ़रमाया, "तुम में से जो भी तीन बातों को करने का वादा करेगा मैं उसे अपना जानशीन और ख़लीफ़ा बना दूँगा। और वह तीन बातें यह हैं: दिनों में रोज़ा रखना, रातों को जाग कर गुज़ारना और गुस्सा न करना। एक नौजवान जिसे लोग पहचानते थे और जो कोई इज़्ज़तदार इंसान भी नहीं था, उसने खड़े होकर कहा, मैं इन बातों का वादा करता हूँ। हज़रत अल-यसा ने दूसरे दिन फिर अपनी बातों को दोहराया और फिर उसी जवान ने आपकी बातों को क़ुबूल किया। हज़रत अल-यसा ने उस नौजवान को अपना जानशीन बना दिया और फिर आप इस दुनिया से चले गए। फिर ख़ुदावंदे आलम ने उसी जवान को जिसका नाम ज़ुलकिफ़्ल[अ०] था नुबुव्वत दे दी।"

शैतान ने बहुत कोशिश की कि जनाब ज़ुलकिफ़्ल को गुस्सा दिलाए और उन से वादा तुड़वा दे। उलमा ने लिखा है कि शैतान ने अपने शार्गिदों में से एक शार्गिद जिसका नाम "अबयज़" था, कहा जाओ और जाकर ज़ुलकिफ़्ल को गुस्सा दिला दो। हज़रत ज़ुलकिफ़्ल[अ०] रातों को सोते नहीं थे, बस दिन में कुछ देर के लिए सो जाया करते थे। अबयज़ पहुँच कर इंतेज़ार करता रहा। यहाँ तक कि जनाब ज़ुलकिफ़्ल को नींद आ गई। फ़ौरन ही अबयज़ ने चिल्लाकर कहा कि मुझ पर ज़ुल्म हुआ है, ज़ालिम से मेरा हक़ वापस दिला दो। हज़रत ज़ुलकिफ़्ल ने फ़रमाया कि जाओ उस ज़ालिम को लेकर आओ। अबयज़ ने हज़रत ज़ुलकिफ़्ल से गारंटी के तौर पर अंगूठी ली और चला गया। दूसरे दिन फिर वापस आया और चिल्ला कर कहा कि मैं मज़लूम हूँ। ज़ालिम ने आपकी अंगूठी देख कर भी मेरी एक न सुनी और मेरे हाथ नहीं आया। हज़रत ज़ुलकिफ़्ल ने दोबारा उस से कहा कि थोड़ी देर मुझे छोड़ दो ताकि मैं सो लूँ क्योंकि मैं एक रात और एक दिन से नहीं सोया हूँ। अबयज़ ने जवाब दिया कि मुझ पर ज़ुल्म हुआ है। मैं आपको सोने नहीं दूँगा। हज़रत ज़ुलकिफ़्ल ने एक ख़त लिख कर अबयज़ को दिया कि उस ज़ालिम को ले जाकर दे दो। तीसरे दिन फिर जैसे ही ज़ुलकिफ़्ल को नींद आई अबयज़ फिर आय गया और उसने आकर आपको जगा दिया। हज़रत ज़ुलकिफ़्ल ने अबयज़ का हाथ थामा और तेज़ गर्मी के बावजूद उसके साथ चल दिए लेकिन एक बार भी आप ने गुस्से का इज़हार नहीं किया जबकि गर्मी बहुत ज़्यादा थी। कुछ उलमा ने लिखा है कि ऐसी गर्मी थी कि अगर गोश्त को धूप में रख दिया जाता तो वह ख़ुदबख़ुद पक जाता। आख़िरकार अबयज़ अपनी कोशिशों में नाकाम हो गया और हज़रत ज़ुलकिफ़्ल को गुस्से में नहीं ला पाया और उनके पास से वापस आ गया।[1]

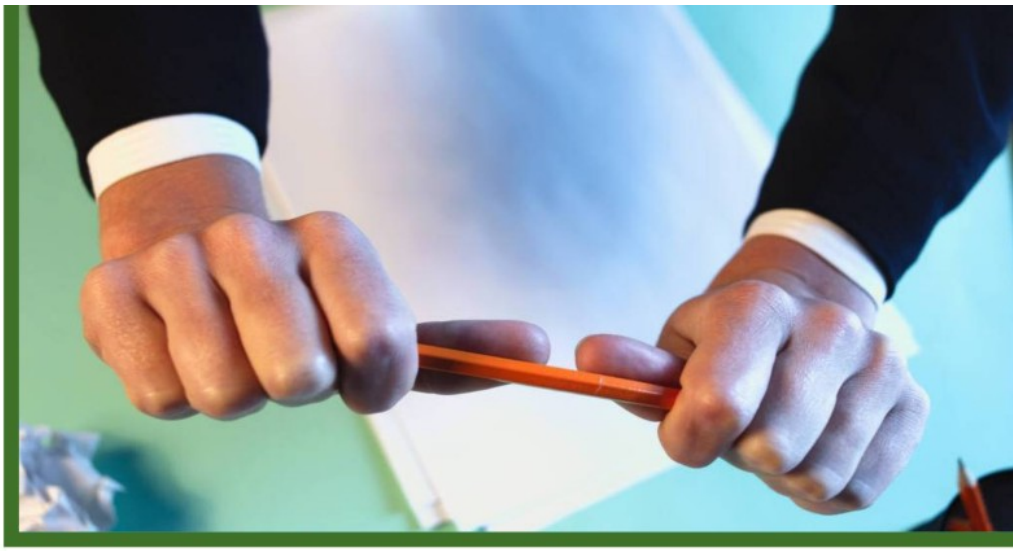

इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ॰] ने मोमिन की पाँच निशानियां बताई हैं। आप से सवाल किया गया वह कौन-सी निशानियां हैं? आप ने फ़रमाया, "अकेले में गुनाह न करना, ग़रीबी में सदक़ा देना, मुसीबत पड़ने पर सब्र करना, गुस्से को पी जाना, डर के बावजूद सच बोलना।

जब हज़रत नूह[अ॰] अपनी क़ौम पर लानत कर चुके और क़ौम पर ख़ुदा का अज़ाब आ गया तो शैतान अपने साथियों के साथ आया और कहने लगा कि ऐ नूह! आपका मुझ पर हक़ है और मैं चाहता हूँ कि आपने जो मेरी ख़िदमत की है उसको शुक्राना के बतौर अदा करूँ। हज़रत नूह ने फ़रमाया कि यह मेरे लिए कितना बुरा है कि मुझ पर कोई हक़ रखता हो। अच्छा बताओ वह है क्या? शैतान ने कहा कि ऐ नूह! आप ने अपनी क़ौम पर लानत कर दी और ख़ुदा ने उन पर अज़ाब नाज़िल कर दिया। अब मैं सुकून से हूँ क्योंकि जानता हूँ कि अब कई साल तक कोई ऐसा है ही नहीं जिसे मैं बहका सकूँ। हज़रत नूह ने फ़रमाया कि यह तो बता दे कि तू किस तरह इसकी अदायगी करना चाहता है। शैतान ने कहा कि मुझे तीन जगहों पर ज़रूर याद रखना क्योंकि मैं इन तीन जगहों पर लोगों से बहुत ज़्यादा क़रीब रहता हूँ:

१- गुस्से के वक़्त

२- दो लोगों के बीच फ़ैसला करते वक़्त

३- दो नामहरमों के किसी एक जगह जमा हो जाने पर जहाँ किसी तीसरे के पहुँचने की उम्मीद न हो।

जिस तरह जानवरों में एक चीज़ 'ग़रीज़ा' (ख़्वाहिश) पाई जाती है इंसान में भी गुस्सा उसी तरह एक बुरी सिफ़त है जो इसमें पाई जाती है जिसे कंट्रोल करने की बहुत ज़्यादा ज़रूरत है क्योंकि बहुत सारे गुनाहों की जड़ गुस्सा ही है। अगर किसी जगह कुछ लोग एक दूसरे पर गुस्सा कर रहे हों तो मेहरबानी के साथ बातचीत करके उनके गुस्से को ख़त्म कर देना चाहिए। गुस्से को पी जाना ख़ुदा के बन्दों की बेहतरीन सिफ़त है।

एक शख़्स रसूले अकरम[स॰] की ख़िदमत में पहुँचा और आपसे नसीहत करने की दरख़्वास्त की। रसूले अकरम[स॰] ने उसके जवाब में एक छोटा सा जुमला कहा जो यह था कि "गुस्सा न करो"। उस शख़्स ने बस इतनी सी बात को ही गिरह में बाँध लिया और अपने क़बीले में पलट गया। उसके और एक दूसरे क़बीले के बीच इख़्तेलाफ़ात पैदा हो गए और दोनों एक दूसरे के मुक़ाबले में जंग की तैयारी करने लगे। उस शख़्स में भी पुरानी आदत के मुताबिक़ गुस्सा पैदा हो गया और अपने क़बीले की हिमायत में हथियार लेकर खड़ा हो गया। अचानक उसे रसूले इस्लाम[स॰] की बात याद आ गई कि गुस्सा न करो। उसने ख़ुद को कंट्रोल किया और सोचने लगा। फ़ौरन ही उसने अपने अंदर इंक़ेलाब देखा और उसका ज़मीर जाग गया और वह यह सोचने पर मजबूर हो गया कि आख़िर क्यों बे वजह यह लोग एक दूसरे के मुक़ाबले में खड़े हैं। वह दुश्मन की सफ़ के सामने गया और कहने लगा कि भाई जो तुम्हारे नुक़सान हुए हैं हम उसे अपने माल से देने के लिए तैयार हैं। जब सामने वाले ने बहादुरी का यह रुख़ देखा तो वह भी पीछे हट गए और वह आग जो गुस्से से पैदा हुई थी अक़्ल व समझ-बूझ के ज़रिए बुझ गई।

हम देखते हैं कि अकसर ऐसा होता है कि बेबात की बात गुस्से की वजह बन जाती है और फिर किसी तरह मसला हल होता नज़र नहीं आता। न जाने कितने बेगुनाहों का ख़ून बह जाता है और इंसान अपने गुस्से पर कंट्रोल नहीं कर पाता। आमतौर से गुस्सा अनानियत ज़्यादा होने पर ज़्यादा होता है। इंसान में जितनी ज़्यादा अना पाई जाती है उतना ही ज़्यादा उस अना की ख़ातिर गुस्सा बढ़ता चला जाता है। कुछ जगहों पर गुस्से के नतीजे में इख़्तेलाफ़ों एक नसल से दूसरी नसलों में ट्रांसफ़र हो जाते थे और नसलों को असल मसला ही नहीं मालूम होता था कि किस बात पर इख़्तेलाफ़ हुआ था लेकिन फिर भी आपस में लड़ते रहते थे।

मोमिन की बेहतरीन पहचान यह है कि वह गुस्से को पी जाए। कुछ किताबों में लिखा है कि जब गुस्सा आए तो अगर खड़े हो तो बैठ जाओ और अगर बैठे हो तो लेट जाओ। ख़ुद पर कंट्रोल करके कोशिश करो कि मुस्कुरा दो।

हिस्ट्री में मिलता है कि एक दिन इमाम सज्जाद[अ॰] के ग़ुलामों में से एक के हाथ से पानी का बर्तन गिर गया और आपका सर ज़ख़्मी हो गया।

इमाम[अ॰] ने उसकी तरफ़ देखा तो उसे लगा कि इमाम नाराज़ हो गए हैं। फ़ौरन ग़ुलाम ने कहा, "ख़ुदा के परहेज़गार बन्दे वह हैं जो गुस्से को पी जाते हैं"।

इमाम[अ॰] ने जवाब दिया, ख़ुदा ने तुम्हें माफ़ कर दिया। ग़ुलाम ने कहा, "ख़ुदावन्दे आलम एहसान करने वालों को पसंद करता है"। इमाम ने फ़रमाया, "मैंने तुम्हें ख़ुदा की राह में आज़ाद किया।[2]

1-तारीख़े अम्बिया, 2/196,
2-तफ़सीर नूरुस्सक़लैन, 2/180

(Source: आईना)

एक अहम फ़रीज़ा

हर क़ौम और हर समाज हिस्ट्री के धारे में बहते हुए अलग-अलग स्टेज से गुज़रता है। कभी उभरता है और कभी डूबता हुआ नज़र आता है और फिर दोबारा भी उभर जाता है लेकिन बिना किसी वजह के न डूबता है न उभरता है। सोसाइटी और समाज पर अगर चेक एण्ड बैलेंस का सिस्टम बना दिया जाए तो उसके उभरने के चांसेज़ ज़्यादा बढ़ जाते हैं और अगर ऐसा न किया जाए तो समाज इस तरह से ख़त्म हो जाता है कि "दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में" की कहावत सही नज़र आती है।

इंसान का नफ़्स बुराई की तरफ़ जल्दी झुकता है और उसे जल्दी अपनाता है। अगर उसे एक तरफ़ नेकी और दूसरी तरफ़ बुराई दिखाई दे तो बुराई का ज़ाहिरी एटरेक्शन उसे लुभा लेता है। इस तरह इंसान के सामने कोई चेक एण्ड बैलेंस का सिस्टम नहीं होता तो वह बहुत जल्दी इन ज़ाहिरी एटरेक्शंस का आदी हो कर धीरे-धीरे बुराई की दलदल में धंसता चला जाता है।

ऐसा ही हमारे समाज में भी होता है। अगर समाजी लेविल पर भी कोई रोक-टोक न हो तो बुराईयां करने वाले निडर होते चले जाते हैं और नेक काम करने वालों की कमर भी कमज़ोर होती चली जाती है जिससे धीरे-धीरे वह ख़ुद भी उन ही बुराईयों का शिकार हो सकते हैं। आज के दौर में इसका सबसे अच्छा नमूना रिश्वत की लानत है। जब हर इंसान यह देख रहा है कि अच्छे से अच्छे कामों में भी रिश्वत के बिना कोई चारा नहीं है और उन्हें पकड़ने वाला भी कोई नहीं है तो हर इंसान इसी करप्शन के बारे में सोचना शुरू कर देता है जिसमें शैतान भी उसके दिल में अपने डोरे डालता है और धीरे-धीरे समाज पूरी तरह से तबाही के खंडर तक पहुंच जाता है।

अगर करप्शन निचले तबक़े में होता है तो उसका असर ज़्यादा नहीं फैलता और अगर दौलतमंद लोग बुराईयों में घिर जाएं तो इसका घेरा और ज़्यादा फैल जाता है और अगर उसमें हुकूमत का तबक़ा भी शामिल हो जाए तो हुकूमत की ताक़त भी बुराईयों को बढ़ावा देने में लग जाती हैं जिसके बाद 'नही अनिल मुनकर' करना मौत को दावत देना जैसा होता है। यही वजह है कि ज़ालिम हुकूमत के सामने हक़ बात कहना सबसे बड़ी इबादत मानी गई है।

'अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुनकर' एक ऐसा अहम फ़रीज़ा है जिस पर जितना ज़्यादा लोग अमल करेंगे उतना ही समाज में बुराईयां कम होंगी, अमन व सुकून ज़्यादा होगा और समाज एक ज़िंदा समाज कहलाएगा। लेकिन अगर इस ज़िम्मेदारी पर अमल न किया जाए तो धीरे-धीरे अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा कहना मुश्किल हो जाएगा और बातिल हक़ के भेस में सामने आ जाएगा। आज हमारे समाज में कुछ ऐसी ही हालत नज़र आती है कि लोग खुल्लम खुल्ला बुराईयां करते हैं और उस पर फ़ख़्र भी करते हैं...और फिर फ़ख़्र भी इस तरह कि जैसे किसी हुनर या फ़न को बढ़ावा दे रहे हों और उस पर सितम यह कि मीडिया में इसे ब्रेकिंग न्यूज़ में जगह दी जाती है। यह सब कुछ उस फ़रीज़े से आँखें बंद करने की वजह से है जिसकी वजह से हम बहुत सी ज़मीनी और आसमानी बलाओं के ज़िम्मेदार हैं।

हिस्ट्री में हमें बहुत से दौर ऐसे मिलेंगे जहां 'अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुनकर' की तरफ़ ध्यान न देने से समाज तबाह हो गए। क़रीब था कि यह लापरवाही दीन को भी तबाह कर देती लेकिन ख़ुदा की तरफ़ से भेजे गए नबी और इमामों ने क़ुर्बानियां देकर और इस फ़रीज़े पर अमल करके दीन को बचा लिया।

यही बात हमें आशूरा में नज़र आती है। इमाम हुसैन[अ] ने अपने मिशन के शुरू में ही अपना नज़रिया दे दिया था कि "मैं अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुनकर" करना चाहता हूं। मैं अपने नाना, मुहम्मद मुस्तफ़ा[स] और अपने बाबा, अली[अ] की सीरत पर चलना चाहता हूं।

दीन को तबाह करने की सोची-समझी और पुरानी साज़िश के मुक़ाबले में इमाम हुसैन[अ] का यह छोटा सा उसूल दीन के दुश्मनों की साज़िशों को नाकाम बनाने के लिए क़यामत तक के लिए एक रौशनी है क्योंकि हदीसों के मुताबिक़ अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुनकर वह फ़र्ज़ है जिस पर दूसरे फ़र्ज़ टिके हुए हैं। इस पर अमल करने का मतलब है पूरे दीन को बचा लेना।

यानी जब भी दीन के नाम पर दीन से दुश्मनी की जाए, दीन के ख़िलाफ़ साज़िशें रची जाएं, दीन को मिटाने की कोशिशें की जाएं तो हुसैनी ही उठ कर ज़ालिम हाकिमों की आंखों में आंखें डालकर उन्हें 'नही अनिल मुनकर' करते हैं। बल्कि हर हुसैनी का यह पहला फ़रीज़ा है कि वह सोसाइटी में जिस सतेह पर भी हो, अम्र बिल मारूफ़ व नही अनिल मुनकर को जारी रखे ताकि दीन को मिटाने की दुनिया की सारी साज़िशें नाकाम हो जाएं और हमारे समाज की कश्ती बुराईयों के तूफ़ान को ढकेल कर मुस्कुराहट के साथ हिस्ट्री के पन्नों पर अपनी कामयाबियां सुनहरे लफ़्ज़ों में लिख सके।

“एक करबला से मौला हम भी गुज़र रहे हैं”

■ सफ़दर हमदानी

लाशों का और धमाकों का एक सिलसिला है
शहरों में मेरे या रब!
किस बेधड़क तरीक़े से अब मौत फिर रही है
आँखों में मेरी कोई अब किर्चियाँ सजा दे
मेरे बदन को कोई लटका दे शाख़े गुल पर
तक-तक के रोज़ लाशें, आँखें झुलस गई है
बीनाई घर के गंदे पानी में बह गई है
हम थक गए हैं यारो, लाशें उठा-उठा के
यह हुक्मरान कैसे अंधे हैं, गूँगे, बहरे
किस इत्मिनान से यह कहते हैं “ठीक है सब”
और यह जो कर रहे हैं
यह हैं अवाम दुश्मन”
इन हाकिमों से कोई अब जा के यह तो पूछे
तुम से बड़ा भी कोई दुश्मन अवाम का है ?
हर रोज़ उठ रहे हैं हर सिम्त से जनाज़े
हर घर में एक मातम, हर आँख रो रही है
लगता है मुल्क भर की तक़दीर सो रही है

कैसी है यह हुकूमत नफ़रत बो रही है
यह मेरे शहर जैसे, बग़दाद बन गए हैं
हर शाम आसमाँ से ख़ुदकुश उतर रहे हैं
क़ब्रों के मुँह खुले हैं
आफ़त जो आ रही है इन तंग बस्तियों पर
और मर रहे हैं वह जो ग़ुर्बत के हाथों पहले
मुर्दा हुए पड़े हैं
बेहतर है ख़ून में अब बारूद को उतारें
सहमे हुए हैं बच्चे, बूढ़ों पे ख़ौफ़ तारी
यह मेरे घर में यारो है किसकी है जंग जारी
बतलाओ किसकी जंग हम आपस में लड़ रहे हैं
और किस ने मौत हम पर कर दी है यूँ मुसल्लत
मरने के ख़ौफ़ से घर होने लगे मुक़फ़्फ़ल
किस तरह शहर भर में फिरती है मौत पागल
शहरों में उग रहे हैं कितने सरों के जंगल
अब सहन मेरे घर का लगता है जैसे मक़तल
एक करबला थी वह भी
ज़र्रों में जिसके अब तक शब्बीर का लहू है
और एक सदाए मातम जिसकी फ़िज़ाओं में है
यह भी ग़लत नहीं है
"एक करबला से मौला! हम भी गुज़र रहे हैं"
इस जिंदगी के हाथों हम रोज़ मर रहे हैं
हिकमत यज़ीद की फिर हम पर हुई मुसल्लत
जिस सिम्त देखता हूँ दम तोड़ती है इज़्ज़त
सारी सदाक़तों के फिर सामने है नफ़रत
अब सब यज़ीद मिलकर फिर माँगते हैं बैअत
फिर जेसे नैनवा में लाशे बिखर रहे हैं
सर दोश पर नहीं हैं और तीर चल रहे हैं
"एक करबला से मौला हम भी गुज़र रहे हैं"

अलमबरदारी की तारीख़

■ ज़फ़र ताज नक़वी

अलम, रायत, लिवा, निशान जैसे लफ़्ज़ अलग-अलग ज़बानों में क़रीब-क़रीब एक ही मायने में इस्तेमाल होते हैं। इनका इस्तेमाल पुराने ज़माने से चला आ रहा है। जंगों में अलमबरदारी का ओहदा एक बहुत बड़ा ओहदा समझा जाता था।

इन्सानों में सबसे पहले हज़रत शीस[अ] और क़ाबील के बीच जंग हुई थी। जंग जब शुरू हुई और दोनों में मुक़ाबले की ठहर गई। उस वक़्त जनाबे शीस ने वह सफ़ेद लिबास पहना जो ख़ुदा ने उन्हें इसी मौक़े के लिए भेजा था। इस पहली जंग में अलमबरदार फ़रिश्ते थे। उनके अलम का फरेरा सफ़ेद था। आख़िर में फ़रिश्तों ने क़ाबील को जंग के बाद गिरफ़्तार करके एक जगह 'ऐन शम्स' में पहुंचा दिया और वह वहीं मर गया।

कुछ किताबों से पता चलता है कि अलम की ईजाद पुराने ज़माने के मिस्री बादशाहों ने की है और जाहिलियत के ज़माने में भी इसका अच्छा ख़ासा रिवाज रहा है। हर क़बीले का अलग-अलग अलम हुआ करता था जिसके नीचे जंग के वक़्त क़बीले के तमाम लोग जमा हो जाया करते थे। एक रिवायत में है कि पहले अलम की बुनियाद हज़रत इब्राहीम[अ] ने डाली है।

कुछ स्कालर्स का मानना यह है कि क़ुरैश का अलम क़ुसई बिन किलाब के हाथों में रहा करता था। फिर उसके बाद बनी हाशिम के हाथों में रहा। जब रसूले इस्लाम[स] का ज़माना आया तो रसूल[स] ने यह अलम इस्लामी फ़ौज के अलमदार हज़रत अली[अ] को दे दिया जो जंगे बद्र व ओहद बल्कि हर लड़ाई में आपके ही हाथों में रहा। इसका रंग सफ़ेद था। इसके बाद जब मुसलमानों की हुकूमतें बनीं तो उनके निशान भी अलग-अलग शक्लों और रंगों के होने लगे। किसी का हरा, किसी का लाल और किसी का सफ़ेद व काले रंग का अलम होता था। मगर अब्बासियों का अलम तो एक तरफ़ उनकी सारी वर्दी भी काली थी।

बज़ाहिर रायत उस अलम को कहते हैं जो आम लश्कर के सरदार के पास हो और लिवा उसको कहते हैं जो किसी क़बीले का हो। यही वजह है कि जंगे ख़ैबर में रायत ही का ज़िक्र है क्योंकि वह सारी इस्लामी हुकूमत का अलम था यानी किसी ख़ास क़बीले का नहीं था।

इस मौक़े पर ध्यान देने वाली बात यह है कि फ़ौज के कमाण्डर इन चीफ़ यानी अलमदार को कैसा होना चाहिए? इसके बारे में कुछ बातें यह हैं :-

1- अलमदार को बाहिम्मत, मज़बूत दिल वाला और बहादुर होना चाहिए।

2- पहाड़ अपनी जगह से सरक जाए तो सरक जाए मगर जंग में उसके क़दम पीछे न हटें।

3- मैदाने जंग से भागने को ज़िल्लत समझता हो।

4- अलमदार को अपने सरदार के हुक्म का पाबंद होना चाहिए। ख़ुलासा यह कि एक अलमदार को वैसा ही होना चाहिए जैसे इस्लाम के शुरू में हज़रत अली[अ] व जाफ़र तैय्यार वग़ैरा और रोज़े आशूरा जनाबे अब्बास[अ] थे।

जंगे ओहद में अलम रसूल[स] के हाथ में था। फिर हज़रत अली[अ] के हाथ में आया। लड़ाई के बीच हज़रत अली[अ] की दाहिनी कलाई की हड्डी टूटी तो आपके हाथ से अलम छूट गया। लोगों ने बढ़कर उठाना चाहा तो रसूल[स] ने फ़रमाया कि तुम अलम उन्हीं के हाथ में दे दो क्योंकि यही दुनिया व आख़िरत में मेरे अलमदार हैं। इस बात से साफ़ है कि अलमदार के लिए अलम की हिफ़ाज़त बहुत ज़रूरी है। रसूल अल्लाह[स] का यह कहना कि अलम बाएं हाथ में ले लो, यह बताता है कि जंग में जब अलमदार का एक हाथ कट जाए तो फ़ौरन अलम बाएं हाथ में ले ले। यही वजह थी कि जब करबला में हज़रत अब्बास[अ] का एक हाथ कटा तो आपने अलम अपने दूसरे हाथ में ले लिया और जब दोनों हाथ कट गए तो सीने से लगा लिया। इससे साफ़ हो गया कि अलम को गिरने नहीं देना चाहिए और यह रसूल[स] का हुक्म था। हज़रत अब्बास[अ] ने अलम को सीने से लगाकर अलम की हिफ़ाज़त को साबित कर दिया था।

आशूरा के दिन हुसैनी लश्कर की तैयारी और अलमदार का सिलेक्शन इमाम हुसैन[अ] ने ख़ुद किया था। सबसे पहले सारे लश्कर पर एक बार सरसरी नज़र दौड़ाने के बाद जो जिस ओहदे के लायक़ था उसको वह ओहदा दिया। जनाबे ज़ुहैरे क़ैन को बीस साथियों के साथ मैमन-ए-लश्कर बनाया और जनाबे हबीब बिन मज़ाहिर को बीस लड़ाकों के साथ मैसरा पर भेज दिया और पूरे लश्कर की कमांड हज़रत अब्बास[अ] को सोंप दी।

ख़ुलासा यह कि बेसत के बाद अलमदार हज़रत अली[अ] रहे। फिर अलग-अलग रास्तों से होता हुआ यह अलम हज़रत अब्बास[अ] के हाथों में आया जिसका रंग 'धानी' था। जिस पर मौलाना सिब्ते हसन साहब क़िब्ला फ़रमाते हैं:

रायते अब्बास के परचम से बदला रंगे आब
ख़िज़्र आया नहर की पोशाक धानी हो गई

कश्ती पर मातम

■ डॉ. पैकर जाफ़री

हमारे एक मामू हैं, नाम तो उनका इब्ने हसन है मगर हम उन्हें इब्ने बतूता कहते हैं क्योंकि वह भी इब्ने बतूता की तरह मुल्क-मुल्क की सैर करते रहते हैं। इस बार जब वह सफ़र से लौटे तो हम बच्चों ने उन्हें घेर लिया। वह बंगलादेश के सफ़र से लौटे थे और उन्होंने मोहर्रम भी वहीं गुज़ारा था। "क्या वहाँ भी अज़ादारी होती है"?

"अरे भाई! मेरे मौला, मेरे आक़ा का ग़म कहाँ नहीं मनाया जाता। तिब्बत की बर्फ़ से ढकी हुई पहाड़ियाँ हों या अरब का तपता रेगिस्तान, हबशियों का देश अफ़्रीक़ा हो या अमेरिका हर जगह मेरे मौला का मातम होता है।

"तो आप ने वहाँ क्या देखा? वहाँ के लोग किस तरह अज़ादारी करते हैं? अम्मार ने पूछा। "जब हम बंगलादेश की राजधानी ढाका के एयरपोर्ट ज़ियाउर्रहमान इंटरनेशनल एयरपोर्ट पर उतरे तो हमारी आँखें नम हो गईं क्योंकि कभी यह भी हमारे मुल्क ही का हिस्सा था।"

हम एयरपोर्ट से निकले और टैक्सी के ज़रिए शहर के बीच में बने "सुनारगढ़" नामी होटल में ठहरे। यह एक फ़ाइवस्टार होटल है। इसी होटल में मेरी मुलाक़ात मजुमदार से हुई। वह एक पेशेवर गाइड था। उस से जब मैंने पूछा, "भाई! क्या यहाँ अज़ादारी होती है?" तो उस ने कहा, "क्यों नहीं!" वह मुझे साथ लेकर पुराना पलटन के ख़ोजा शिया इसनाअशरी जमाअत ख़ाना पहुँचा। उस इमाम बारगाह के बनने में हबीब बैंक पाकिस्तान के कुछ एम्लाईज़ का अहम रोल रहा है। पाकिस्तान के बनने के बाद शहर के बीच में ज़मीन ख़रीद कर उन्होंने अज़ाख़ाना बनवा दिया था।"

"तो क्या वहाँ यही एक इमामबाड़ा है?" मैंने मामू इब्ने बतूता से पूछा। "नहीं और भी हैं। बंगाल में अहलेबैत के चाहने वालों के बसने में शेर अफ़गन और नवाब शाइस्ता ख़ान का अहम रोल है। फिर नवाब अली वर्दी ख़ान और नवाब सिराजुद्दौला ने भी अपनी हिम्मत भर कोशिश की", उन्होंने कहा।

नवाब शाइस्ता ख़ान के दौर में मीर मुराद, जहाँगीराबाद (ढाका का पुराना नाम) का हाकिम था। उसने एक रात ख़्वाब में देखा कि एक नक़ाबपोश बीबी आई हैं और उस से कह रही हैं तुम कैसे सैय्यद हो? अपना महल तो बनवा लिया और अपने जद को भूल गए? बस उसी रात की सुबह को उसने लालबाग़ क़िले से आठ किलोमीटर की दूरी पर हुसैनी दालान (हुसैन[अ] की बारगाह) बनाने का हुक्म दे दिया जो आज भी उसी शानोशौकत से बाक़ी है।

"मामू जान! क्या आप ने उस इमामबाड़े में रखे गए तबर्रुकात की ज़ियारत की है?" "हाँ! क्यों नहीं! इतनी बड़ी ज़रीह रखी गई है कि क्या बयान करूँ। यह ज़रीह दिल्ली के बादशाहों ने नज़र की है। उन लोगों ने पहली ज़रीह भेजी तो वह सैलाब की वजह से मुर्शिदाबाद में उतरवा ली गई जो आज भी नवाब सिराजुद्दौला के बनाए हुए इमामबाड़े "हज़ार दवारी" (एक हज़ार दरवाज़ों वाला) में रखी हुई है। जब सैलाब ख़त्म हुआ तो एक दूसरी ज़रीह भेजी गई। हुसैनी दालान इमाम बारगाह क़रीब 90 हज़ार गज़ पर बनी हुई है। पीछे एक बहुत बड़ा तालाब है और सामने काफ़ी लम्बा चौड़ा मैदान जैसा अहाता है। 5 और 7 मोहर्रम को यहाँ जुलूसे अज़ा बरामद होता है। मजलिस के शुरु होने का एलान, नक़्क़ारे पर चोट मार कर किया जाता है। मेन गेट के ऊपर जो ज़मीन से क़रीब 60 फ़िट ऊँचा है वहाँ एक बहुत बड़ा तबल (नक़्क़ारा) रखा है। जैसे ही मजलिस शुरु होती है एक मज़बूत जिस्म वाला मुलाज़िम उसे बजाना शुरु कर देता है और नक़्क़ारे की आवाज़ सुनकर लोग इमाम बारगाह में आना शुरु हो जाते हैं। मजलिस में हर फ़िरक़े के लोग आकर बैठते हैं।

आशूर के रोज़ हाथी, घोड़ों के साथ जुलूस निकलता है। जो अज़ीमपुर क़ब्रिस्तान में जाकर ख़त्म हो जाता है। इस जुलूस में सिर्फ़ दो अलम होते हैं।

जब पूरबी पाकिस्तान बना और भारत के दीगर इलाक़ों से हिजरत करके उर्दू बोलने वाले आए तो उन्होंने पुराना पल्टन, मिग बाज़ार,

मोहम्मदपुर और मीरपुरी में भी इमामबाड़ा बना लिया। इस से पहले हुसैनी दालान, बड़ा कटहरा, छोटा कटहरा और पाक बीबी इमाम बाड़ों में अज़ादारी होती थी।

भारत के दूसरे इलाक़ों से आए लोगों ने आशूर का जुलूस रिवायती अंदाज़ में निकालना शुरु किया जो पुराना पल्टन से निकल कर बाज़ार आता जहाँ दूसरे जुलूस भी इसमें शामिल हो जाते जो तेज गाँव की करबला में जाकर ख़त्म होते। बस यूँ समझ लो कि ढाका में एक साथ दो तरह की अज़ादारी होती है, एक उर्दू बोलने वालों की और दूसरे मक़ामी लोगों की।

"ढाका के अलावा भी कहीं और अज़ादारी होती है?" कुमैल ने सवाल किया।

"क्यों नहीं। सिलहट में बंगला ज़बान बोलने वाले सादात हैं। चीटागाँव, जैसोर और खुलना वग़ैरा में भी अज़ादारी होती है। खुलना में एक मदरसा भी है "क़ाएमे आले मोहम्मद" के नाम से।

फिर मामूजान ने कहा, "घना और बहुत ख़तरनाक जंगल और पहाड़ी इलाक़े में कैसे अज़ादारी होती है इसको बाद में बयान करूँगा। इस वक़्त एक ख़ास जुलूस के बारे में सुन लो"।

पश्चिमी बंगाल जो भारत में है, वहाँ चौबिस परगना ज़िले में एक जगह है हैदरपुर। यह काक दीप के पास है। हैदरपुर छोटे-छोटे जज़ीरों से बना है। आशूर के रोज़ हैदरपुर से क़रीब पचास कश्तियाँ चलती हैं जिनमें से एक पर छोटा सा अलम होता है बाक़ी बैठकर नौहा पढ़ते हैं और मातम करते हैं। पहली कश्ती पर नौहाख़्वाँ होता है वह नौहा पढ़ता है बाक़ी कश्ती के लोग जवाब देते हैं। आहिस्ता-आहिस्ता दूसरे जज़ीरों से भी कश्तियाँ आकर जुलूस में मिल जाती हैं। क़रीब सौ-सवा-सौ कश्तियों का यह जुलूस से-पहर तक "रानी पोकोर करबला" पहुँच जाता है। जहाँ ताज़िए दफ़न किए जाते हैं। सोचो वह कैसा मंज़र होता होगा कि नदी के बीचो-बीच बहते पानी पर कश्तियों पर बैठे लोग मातमदारी कर रहे हैं। रानी पोकोर के मैदान ही में शामे ग़रीबाँ की मजलिस होती है जिसके चारों तरफ़ पानी ही पानी नज़र आता है।"

"एक शख़्स ने इस्लाम को मिटाने के लिए रसूल[स०] के नवासे को शहीद कराया। आज उस शख़्स (यज़ीद) का नाम लेवा कोई नहीं है जबकि मेरे मौला हुसैन[अ०] के नाम लेवा कहाँ नहीं हैं। सच! हक़ का परचम क़यामत तक लहराता रहेगा।" कुमैल ने साँस लेकर कहा।

यूनिटी

● *अरब को किसी ग़ैर अरब पर और ग़ैर अरब को किसी अरब पर कोई फ़ज़ीलत और बरतरी नहीं है। बिल्कुल इसी तरह गोरी रंगत वाले को काली रंगत वाले पर और काली रंगत वाले को गोरी रंगत वाले पर भी कोई फ़ज़ीलत नहीं है।* (रसूले इस्लाम[स०])

● *मैंने पैग़म्बर[स०] को यह कहते हुए सुना है कि लोगों में अम्नो-अमान बाक़ी रखना रोज़ा-नमाज़ से बेहतर है।* (हज़रत अली[अ०])

● *सभी मुसलमान एक-दूसरे के भाई और आपस में सब बराबर हैं। इन लोगों के बीच किसी तरह का कोई फ़र्क़ नहीं है। इसलिए तमाम लोगों को तौहीद के परचम तले एक हो कर रहना चाहिए।* (इमाम ख़ुमैनी)

● *पॉलिटिक्स ने अहलेसुन्नत व शियों को हमेशा एक-दूसरे से दूर रखा है लेकिन अब पॉलिटिक्स को चाहिए कि वह इन दोनों में इस्लामी यूनिटी पैदा करे।* (सै. अब्दुल हुसैन शरफ़ुद्दीन, लेबनान)

● *इस्लामी मुल्कों में रहने वाले हम सभी राईटर्स और लिखने वाले तमाम इख़्तेलाफ़ों के बावजूद ख़ुदा के एक होने और पैग़म्बर की नुबुव्वत के सिलसिले में एक अक़ीदा रखते हैं।* (अल्लामा अमीनी, ईरान)

● *ख़ुदा, क़ुरआन और इस्लामी यूनिटी के नाम पर मैं अहलेसुन्नत और शिया दोनों स्कॉलर्स को आपस में मिल-जुल कर रहने की दावत देता हूँ।* (शैख़ शलतूत, अल-अज़हर यूनिवर्सिटी)

● *शिया और अहलेसुन्नत हज़रात के बीच कोई इख़्तेलाफ़ नहीं है। यह सिर्फ़ साम्राजी ताक़तें हैं जो मुसलमानों के बीच दूरियां बाक़ी रखने के लिए इख़्तेलाफ़ों को बढ़ावा देती हैं।* (शैख़ मोहम्मद कफ़्तारू)

● *मैं ख़ुदा की बारगाह में दुआ करता हूँ कि वह तमाम मुसलमानों को जिहालत, इख़्तेलाफ़ और दूरियों के अंधेरों से निजात अता कर दे और उनके दिल को आपसी यूनिटी और मेल-जोल व भाईचारे के नूर से रौशन कर दे।* (आयतुल्लाह बुरूजर्दी, ईरान)

● *इस्लाम ही वह मज़हब है जो अक़ीदे व अमल दोनों में नस्ल परस्ती को नकारते हुए इंसान की आला क्वालिटीज़ पर यक़ीन रखता है।* (डॉ. अली शरीअती, इस्लामी स्कालर)

● *अगर हम सुन्नी और शिया दोनों फ़िरक़ों के बुनियादी अक़ीदों और उसूलों की स्टडी करें तो हम देखेंगे कि दुनिया के तमाम मुसलमान शिया हैं क्योंकि हर मुसलमान अहलेबैत[अ०] से मोहब्बत करता है। बिल्कुल इसी तरह दुनिया के तमाम मुसलमान सुन्नी हैं क्योंकि हर मुसलमान पैग़म्बर[स०] की उन तमाम सीरतों पर अमल करता है जो सही रास्तों से होती हुई हम तक पहुंची हैं।* (आयतुल्लाह कुम्मी, ईरान)

एक हों मुस्लिम हरम की पासबानी के लिए ।
नील के साहिल से लेकर ता ब-ख़ाके काशग़र (अल्लामा इक़बाल)

اِنَّ الذِینَ قَالُوا رَبُّنا اللّٰهُ
ثُمَّ استَقامُوا تَتَنَزَّلُ عَلَیهِم المَلائِکَةُ
اَلَّا تَخافُوا وَلا تَحزَنُوا وَاَبشِرُوا بِالجَنَّةِ
الَّتِی کُنتُم تُوعَدُونَ

(सुरए फ़ुस्सिलत/30)

पालने वाला

■ फ़साहत हुसैन

"बेशक जिन लोगों ने यह कहा कि अल्लाह हमारा रब है और उसी पर जमे रहे उन पर फ़रिश्ते यह पैग़ाम लेकर नाज़िल होते हैं कि डरो नहीं और रंजीदा भी न हो और उस जन्नत से ख़ुश हो जाओ जिसका तुम से वादा किया जा रहा है।"

दुनिया में ऐसी बहुत सी सच्चाईयाँ हैं जिन्हें सभी मानते हैं और कोई भी उनका इन्कार नहीं करता है जैसे हर इंसान झूठ के सामने सच्चाई, धोकेबाज़ी के मुक़ाबले में ईमानदारी और बुराई के मुक़ाबले में अच्छाई को सही कहता है। लेकिन उनको एक बार अच्छा मानना काफ़ी नहीं होता है बल्कि पूरी ज़िंदगी इन उसूलों पर डटे रहना अहम होता है। हम जब किसी नेक आदमी की तारीफ़ करते हैं तो कहते हैं वह अपनी पूरी ज़िंदगी इन उसूलों के पाबंद रहे हैं। हमेशा सबसे हंसी-ख़ुशी मिलते थे, हमेशा ईमानदारी से काम लेते थे, कभी किसी की बुराई नहीं करते थे। और इसी वजह से हम इनकी तारीफ़ भी करते हैं और इन्हें बड़ा मानते हैं वरना ऐसे लोग बहुत ज़्यादा हैं जो कभी अच्छाई करते हैं तो कभी बुराई। कभी दूसरों को बिलावजह बुरा-भला कहते हैं तो कभी हंसी ख़ुशी मिलते हैं। हम उनकी तारीफ़ नहीं करते हैं। इसका मतलब यह है कि सिर्फ़ किसी चीज़ को अच्छा मान लेना, अच्छा कहना और कभी-कभी इस पर अमल करना ही काफ़ी नहीं होता बल्कि हमेशा इस पर डटे रहना अहम होता है।

इस तरह हम कहते हैं कि सिर्फ़ अल्लाह हमारा रब है। "रब" यानी हमारा पालने वाला है, हमारी सारी ज़रूरतें पूरी करने वाला है। वह ज़रूरतें भी जिन्हें जानते हैं और उस से माँग लेते हैं और वह ज़रूरतें जिन्हें हम जानते भी नहीं हैं और इसलिए उन्हें माँगते भी नहीं हैं लेकिन वह इन ज़रूरतों को भी पूरा करता है। क्योंकि वह हमें बनाने वाला और हमें पालने वाला है इसलिए वह हमारी ज़रूरतों को हम से ज़्यादा जानता है। जिस तरह छोटे बच्चों को अपनी बहुत-सी ज़रूरतें नहीं पता होती लेकिन उनके बड़ों और उनकी परवरिश करने वालों को मालूम होता है कि उन्हें कब क्या चाहिए। और उसे बग़ैर माँगे ही दे देते हैं। इसी तरह हमारी वह ज़रूरतें जिन्हें हम जानते भी नहीं हैं ख़ुदा हमें बिना माँगे देता है।

अगर हम "रब" का यह मतलब समझ जाएं और फिर कहें कि सिर्फ़ अल्लाह हमारा रब है। तब भी सिर्फ़ यह कहना काफ़ी नहीं होगा बल्कि इस पर हमेशा यक़ीन भी रखना होगा और अपनी ज़िंदगी में इसे साबित भी करना होगा। क्योंकि आयत कह रही है कि जिन लोगों ने अल्लाह को अपना रब माना और फिर उसी पर जमे रहे।

जब हम सच्चे दिल से कहेंगे कि अल्लाह हमारा रब है तो इसके दो नतीजे होंगे:

1- अल्लाह पर पूरा भरोसा होगा कि वह हमारा पालने वाला है। हम से मोहब्बत करने वाला है बल्कि इससे ज़्यादा न तो कोई हम से मोहब्बत कर सकता है और न ही हमारी ज़रूरत समझ सकता है। जिस से हमारी ज़िंदगी में कैसी ही सख़्त मुश्किलें क्यों न आ जाएं हम परेशान नहीं होंगे और ख़ुदा

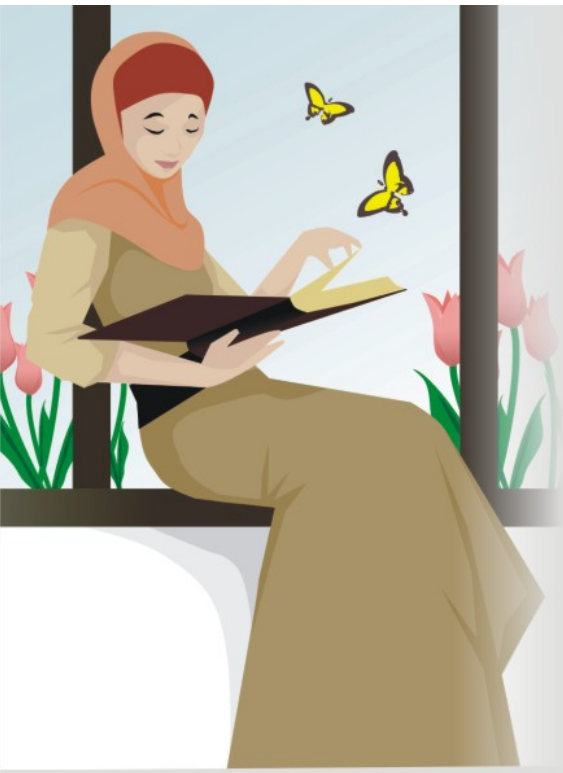

से मायूस नहीं होंगे।

2- किसी भी हालत में हम ख़ुदा के मुक़ाबले में दूसरे के सामने सर नहीं झुकाएंगे न ही ख़ौफ़ और डर की वजह से और न किसी लालच की वजह से। क्योंकि हम कह चुके हैं कि हमारा रब सिर्फ़ अल्लाह है इसके अलावा कोई नहीं। यानी जब हमारे सामने दो रास्ते हों एक वह रास्ता जो ख़ुदा की तरफ़ ले जा रहा हो लेकिन उसमें मुश्किलें हों और दूसरा रास्ता जो आसान हो लेकिन ख़ुदा के रास्ते से दूर कर रहा हो तो हम ख़ुदा के रास्ते के सामने किसी दूसरे रास्ते पर नहीं चलेंगे।

यक़ीनन मुश्किलें आएंगी लेकिन ख़ुदा का वादा है कि 'तुम डरो नहीं क्योंकि तुम ने मेरे ऊपर भरोसा किया है और तुम्हें जन्नत की ख़ुशख़बरी दी जाती है'।

इस आयत की एक मिसाल उस वक़्त सामने आई जब रसूल[स०] ने अपने रसूल होने का एलान किया और लोगों से कहा कि वह बहुत से ख़ुदाओं के बजाए एक ख़ुदा को मानें और उसी की इबादत करें। बहुत से नेक लोग आप पर ईमान लाए लेकिन अभी भी ज़्यादातर लोग ईमान नहीं लाए थे और उन्हें यह बात बहुत ख़राब लगी कि एक मामूली सा इंसान जो उन्हीं के सामने पला-बढ़ा है, उनके ख़ुदाओं को ग़लत कह रहा है और वह अरब के बड़े-बड़े सरदारों से न डर रहा है और न उनकी बात मान रहा है। इसकी वजह से ग़रीबों, ग़ुलामों और कमज़ोर लोगों में इतनी हिम्मत आ गई है कि वह अपने मालिकों का दीन छोड़कर उसके दीन की तरफ़ जा रहे हैं। तो उन सरदारों और उनके क़बीलों ने इस्लाम लाने वालों पर ज़ुल्म ढाना शुरु किया।

रसूले ख़ुदा[स०] के सच्चे अस्हाब यह मुसीबतें बर्दाश्त करते रहे, मुश्किलें झेलते रहे, तरह-तरह की तकलीफ़ें सहते रहे लेकिन उन्होंने अल्लाह को अपना रब मान लिया था तो वह उसी पर जमे रहे। दुश्मनों ने बहुत कोशिश की कि उनको अलग-अलग तरह की तकलीफ़ें देकर इस्लाम से दूर कर दें, लोग उन्हें पत्थर मारते थे, उनका सोशल बाइकाट करते थे लेकिन उनके ईमान में मज़बूती आती गई और उनमें से बहुत से लोग यह मुसीबतें बर्दाश्त करते हुए शहीद भी हो गए।

इसकी एक और मिसाल "कर्बला" है जहाँ इमाम हुसैन[अ०] और उनके बा-वफ़ा अस्हाब भी सिर्फ़ अल्लाह को अपना रब मान चुके थे। इसलिए वह यज़ीद के सामने सर नहीं झुका सकते थे क्योंकि बहरहाल यज़ीद का रास्ता ख़ुदा के रास्ते से अलग था। वह अपने ईमान पर डटे रहे जिसके लिए उन्होंने ऐसी मुश्किलें बर्दाश्त कीं

और ऐसा ज़ुल्म सहा कि करबला दुनिया में मज़लूमियत की मिसाल बन गई। वह ख़ुदा के रास्ते से अलग नहीं हुए।

ख़ुदा ने भी अपना वादा पूरा किया कि बहुत कम तादाद में होने के बावजूद न उनके दिलों में दुश्मन की फ़ौज का डर था और न ही तलवारों की चमक-दमक और नेज़ों व तीरों की संसनाहट का डर। न उन्हें अपने मारे जाने की परवा थी और न अपने घर-बार के उजड़ जाने की।

वह किसी क़बीले के सरदार हों या किसी के ग़ुलाम, बूढ़े हों या बच्चे सभी अपनी ज़बान और अपने अमल से कह रहे थे कि "हम ने सिर्फ़ ख़ुदा को अपना रब मान लिया है, हमारी निगाहों में उसके अलावा कोई नहीं है, हम सब कुछ सह सकते हैं लेकिन ख़ुदा के अलावा किसी की बैअत नहीं कर सकते। इसी वजह से सब शहादत के शौक़ में तड़प रहे थे"।

इन सब में सबसे ज़्यादा मुश्किलें अगर किसी को बर्दाश्त करना थीं तो वह इमाम हुसैन[अ०] थे और सबसे ज़्यादा सुकून और इत्मिनान अगर किसी के पास था वह भी इमाम हुसैन[अ०] ही थे। इसीलिए तारीख़ ने लिखा है कि जैसे-जैसे दिन ढलता जा रहा था और अपने वफ़ादार साथियों और बेटों को क़ुर्बान करने के बाद ख़ुद इमाम हुसैन[अ०] की शहादत का वक़्त क़रीब आ रहा था, उनके चेहरे पर सुकून और इत्मिनान का नूर बढ़ता ही जा रहा था।

करबला और इबरतें

■ आयतुल्लाह ख़ामेनई

करबला सबक़ लेने के अलावा एक इबरत की जगह भी है। इंसान को चाहिए कि वह इस वाक़िए को ग़ौर से देखे ताकि वह इस से इबरत हासिल कर सके। करबला से इबरत लेने का क्या मतलब है? यानी तारीख़ का पढ़ने वाला पिछले हालात और ऊँच-नीच पर गहरी नज़र डाले और देखे कि किस हाल में और किस जगह है, कौन सा काम उसके लिए नुक़सानदेह है और किस काम को करना ज़रूरी है, इसे इबरत लेना कहते हैं यानी दूसरे लफ़्ज़ों में सीख लेना। जैसे आप एक रास्ते से गुज़र रहे हैं। आपने एक गाड़ी को देखा जो उलट गई है या उसके साथ कोई हादसा हो गया है, और नतीजे में उसके मुसाफ़िर मारे गए हैं। आप वहाँ रुक कर देखते हैं, ताकि इस हादसे से 'सीख' लें और जान सकें कि तेज़ रफ़्तारी और ग़लत ड्राईविंग का अंजाम ये हादसा होता है। वाक़िअ-ए-करबला तारीख़ का एक बहुत ख़ास वाक़िआ है इसलिए इसमें भी ग़ौरो फ़िक्र करना चाहिए और इस से सबक़ और इबरत लेना चाहिए।

पहली इबरतः मुसलमानों के हाथों रसूल[स०] के नवासे की शहादत

वाक़िअ-ए-करबला में पहली इबरत जिसकी तरफ़ हमारा ध्यान जाता है वह ये है कि हम ये देखें कि पैग़म्बरे अकरम[स०] के बाद इस्लामी समाज में वह कौन से हालात पैदा हुए कि नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि इमाम हुसैन जैसी शख़सियत को इस्लामी समाज की निजात के लिए ऐसी क़ुर्बानी देना पड़ी। अगर ऐसा होता कि इमाम हुसैन रसूले अकरम[स०] की वफ़ात के एक हज़ार साल बाद इस्लामी मुल्कों में इस्लाम की दुश्मन क़ौमों के सुधार और निजात के लिए ऐसी फ़िदाकारी करते तो ये एक अलग बात थी लेकिन यहाँ इमाम हुसैन मक्का-मदीना जैसे अज़ीम इस्लामी शहरों में 'वही' के ख़त्म होने के पचास साल बाद ऐसे हालात का सामना करते हैं जिनको बदलने के लिए अपनी जान को फ़िदा करने और क़ुर्बानी देने के अलावा कोई और रास्ता नहीं पाते! आख़िर वह कौन से हालात थे कि जिन के लिए इमाम हुसैन ने ये एहसास किया कि सिर्फ़ अपनी जान की क़ुर्बानी ही के ज़रिए इस्लाम को दोबारा ज़िंदा किया जा सकता है। इबरत का मुक़ाम यह है।

ऐसा इस्लामी समाज जिसके रहबर और पैग़म्बर[स०] मक्का व मदीने में बैठकर इस्लाम के झंडे को मुसलमानों के हाथों में दे गए थे, वह मुसलमान जिनसे शाम, ईरान और रूम कपकपाते थे और उन्हें देखते ही भाग जाने ही को ग़नीमत समझते थे। यही वह इस्लामी समाज था कि जिसकी मस्जिदों, गलियों और बाज़ारों में तिलावते क़ुरआन हुआ करती थी।

वह समाज जिसमें इमाम हुसैन[अ०] परवान चढ़े और सब ने पैग़म्बरे अकरम[स०] की इमाम हुसैन से मुहब्बत को देखा। 11 हिजरी से 61 हिजरी तक, 50 सालों में ये क्या हो गया कि यही उम्मत, हुसैन को क़त्ल करने करबला आ गई। वही लोग जो कल तक इमाम हुसैन[अ०] की अज़मतों के गुन गाते थे आज उनके ख़ून के प्यासे बन गए हैं?! 50 सालों में ये कौन सा सियासी, समाजी और कल्चरल इंक़ेलाब आया कि हालात बिल्कुल बदल गए और इस्लाम और क़ुरआन पर ईमान रखने वाले लोग, रसूल[स०] के नवासे के क़ातिल बन गए?! इसलिए करबला के वाक़ेए को सियासी और कल्चरल हालात के आइने में देखना चाहिए जो हम सब के लिए एक सबक़ हो।

अब पचास साल बाद क्या हो गया कि वही समाज और वही शहर, इस्लाम से इतने दूर हो गए

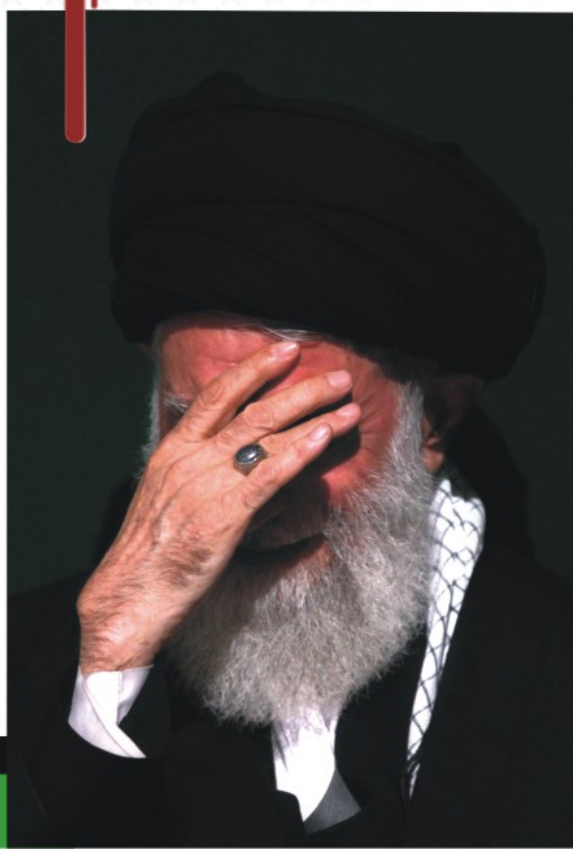

कि हुसैन इब्ने अली जैसी हस्ती ये देखती है कि इस समाज का सुधार व इलाज क़ुर्बानी के अलावा किसी और चीज़ से मुमकिन नहीं है। यही वजह है कि इस क़ुर्बानी की पूरी तारीख़ में कोई मिसाल नहीं है। आख़िर क्या वज्हें थीं और क्या हालात थे जो इमाम हुसैन को करबला आना पड़ा? इबरत का मक़ाम ये है।

दूसरी इबरतः इस्लामी समाज की बीमारी

आज के ज़माने में हमें चाहिए कि इस एंगिल से भी ग़ौरो फ़िक्र करें। आज हम भी एक इस्लामी समाज में ज़िंदगी गुज़ार रहे हैं, हमें तहक़ीक़ करना चाहिए कि उस इस्लामी समाज को कौन सी आफ़त और बीमारी ने आ घेरा था कि जिसके नतीजे में यज़ीद उसका हाकिम बन बैठा था और लोग जानते बूझते हुए भी ख़ामोश थे? आख़िर क्या हुआ कि अली[अ०] की शहादत के बीस साल बाद उसी शहर में कि जहाँ अली[अ०] हुकूमत करते थे और जो आपकी हुकूमत की राजधानी था, अली की औलाद के सरों को नेज़ों पर बुलंद करके फिराया जाता है और आले नबी[अ०] की औरतों को क़ैदी बनाकर उसी शहर के बाज़ारों और दरबारों में लाया जाता है?!

कूफ़ा कोई बेदीनों का शहर नहीं था, ये कूफ़ा वही शहर है जहाँ के बाज़ारों में अली[अ०] अपने दौरे हुकूमत में ताज़ियाना उठाकर चलते थे और मुसलामानों को अम्र बिल मारूफ़ और नही अनिल मुन्कर किया करते थे, रात के अंधेरे में ग़रीबों और फ़क़ीरों की मदद करते थे, रात के पर्दे में कूफ़े की मस्जिद में अली[अ०] की मुनाजात और क़ुरआन की तिलावत की आवाज़ बुलंद होती थी और आप दिन की रौशनी में एक ताक़तवर क़ाज़ी की तरह हुकूमत की बागडोर संभालते थे। आज 61 हिजरी में ये वही कूफ़ा है जहाँ अली[अ०] की पर्दा नशीन औरतों को क़ैदी बनाकर बाज़ारों में फिराया जा रहा है!! इन बीस सालों में ये क्या हो गया था कि हालात यहाँ तक पहुँच गए थे!

1- असली फ़ैक्टरः समाज में फैलने वाली गुमराही

अगर किसी समाज के रहबर पैग़म्बरे अकरम[स०] और अमीरुमोमिनीन जैसी हस्तियाँ हों, सिर्फ़ कुछ दहाईयों में वह समाज उन ख़ास हालात का शिकार हो जाए तो समझना चाहिए कि उस समाज की बीमारी बहुत ही ख़तरनाक है। इसलिए हमें भी इस बीमारी से डरना चाहिए।

उस समाज के बनाने वाले ख़ुद पैग़म्बरे अकरम[स०] थे कि जो आप[स०] की वफ़ात के कुछ सालों बाद ही बीमारियों का शिकार हो गया था। हमारे समाज को बहुत होशियार रहने की ज़रूरत है कि कहीं वह भी इस बीमारी का शिकार न हो जाए, ये है इबरत का मक़ाम! हमें चाहिए कि इस बीमारी को पहचानें और जानें कि उसकी क्या निशानियाँ हैं, इसके नुक़सान क्या हैं और ये बीमार समाज आख़िर में किन हालात का सामना करता है।

मेरी नज़र में करबला का ये पैग़ाम, करबला के दूसरे पैग़ामों और सबक़ों से ज़्यादा आज हमारे लिए ज़रूरी है। हमें उन चीज़ों और हालात को तलाश करना चाहिए जिनकी वजह से उस समाज पर ऐसी बला नाज़िल हुई थी कि इस्लामी दुनिया की अज़ीम शख़सियत और मुसलमानों के ख़लीफ़ा हज़रत अली इब्ने अबी तालिब के बेटे, हुसैन इब्ने अली के कटे सर को उसी शहर में कि जहाँ उनके वालिद हुकूमत करते थे, फिराया जाए और कोई भी कुछ न बोले! उसी शहर से कुछ लोग करबला जाएं और रसूल[स०] के नवासे, उसके घर वालों और साथियों को प्यासा शहीद कर दें और औरतों को क़ैदी बनाएं!

क़ुरआन ने इस बीमारी को मुसलमानों के लिए इस अंदाज़ से पेश किया है, **"और उनके बाद एक ऐसी नस्ल आई कि जिसने नमाज़ को बर्बाद किया और शहवात व ख़्वाहिशात की पैरवी की तो ये लोग बहुत जल्द अपनी गुमराही का नतीजा देखेंगे।"**

गुमराही का असली फ़ैक्टर ज़िक्रे ख़ुदा और रूहानियत से दूरी और ख़्वाहिशों की पैरवी

इस गुमराही के दो फ़ैक्टर हैंः एक ख़ुदा के ज़िक्र से दूरी जैसे नमाज़, यानी ख़ुदा और रूहानियत को भूल जाना, ख़ुदा की तरफ़ ध्यान न देना, ज़िक्र व दुआ न करना, ख़ुदा की बारगाह में न गिड़गिड़ाना, ख़ुदाई हिसाब-किताब को ज़िंदगी से बाहर निकाल फेंकना और दूसरा फ़ैक्टर अपनी

ख़्वाहिशों के पीछे भागना या दूसरे लफ़्ज़ों में दुनिया की चाहत, माल-दौलत जमा करने की फ़िक्र में पड़ना और दुनियावी लज़्ज़तों से मज़े लेकर ख़ुदा और क़यामत को भुला देना।

अपने मक़सद तक पहुँचने की तड़प का दिल से निकल जाना

अगर मक़सद तक पहुँचने की लगन और तड़प इस्लामी समाज से ख़त्म हो जाए या कमज़ोर पड़ जाए, हर शख़्स को सिर्फ़ अपना उल्लू सीधा करने की फ़िक्र हो, तो ज़ाहिर सी बात है कि समाज इस तरह की बलाओं और मुसीबतों का शिकार तो होगा ही।

इस्लामी सिस्टम बनता है गहरे ईमान, बुलंद हिम्मतों, पक्के इरादों, और बड़े मक़सदों से। यह समाज इन्हीं चीज़ों के ज़रिए बाक़ी रहता है और इसी रास्ते पर चल के तरक़्क़ी करता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो ज़ाहिर है कि समाज ऐसे मुक़ाम पर जा पहुँचेगा कि फिर करबला में शहादत पेश करना ही पड़ेगी। इस्लामी समाज भी उस वक़्त इसी हालत से दोचार था।

जब ख़िलाफ़त की कसौटी बदल जाए

एक वह ज़माना था जब मुसलमानों के लिए ज़िंदगी के हर हिस्से में इस्लाम की बढ़ोत्तरी, हर क़ीमत पर ख़ुदा की मर्ज़ी की चाहत, इस्लामी टीचिंग्स का फैलाव और क़ुरआनी टीचिंग्स ज़रूरी थीं। हुकूमती सिस्टम और तमाम मोहकमे तक़्वे में लगे हुए और दुनिया व दुनियावी ख़्वाहिशों को भुलाते हुए आगे-आगे थे। इन्हीं हालात में अली इब्ने अबी तालिब जैसी हस्ती ख़लीफ़ा बनती है और हुसैन इब्ने अली एक अज़ीम शख़सियत की सूरत में सामने आते हैं क्योंकि इन हस्तियों के पास दूसरों से ज़्यादा हिदायत, राहनुमाई, इमामत और ख़िलाफ़त का हक़ था।

जब तक़्वा और परहेज़गारी, इमामत व ख़िलाफ़त की कसौटी हों और ऐसे लोग हुकूमती बागडोर संभालें तो तब जाकर समाज, इस्लामी समाज बनता है लेकिन जब इमामत और ख़िलाफ़त के चुनाव की कसौटी बदल जाए यानी सबसे ज़्यादा दुनिया परस्त, सबसे ज़्यादा ख़्वाहिशों का गुलाम, शख़्सी फ़ायदे को जमा करने के लिए सबसे ज़्यादा चालाक इंसान हुकूमत की लगाम संभाले तो नतीजा ये होगा कि इब्ने साद, शिम्र और इब्ने ज़ियाद जैसे लोग ज़्यादा होंगे और हुसैन इब्ने अली जैसे लोगों को मक़तल में बेदर्दी से क़त्ल कर दिया जाएगा।

दिलों में तड़प रखने वाले लोग इन कसौटियों को बदलने न दें

ये दो-दो, चार का मामला है। इसलिए दिलों में तड़प रखने वाले लोग इस बात का मौक़ा ही न आने दें कि समाज में ख़ुदा की तरफ़ से तय की गई कसौटियाँ और उसूल बदल जाएं। अगर ख़लीफ़ा को चुनने के लिए तक़्वे की कसौटी को ख़त्म कर दिया जाए तो ज़ाहिर सी बात है कि हुसैन इब्ने अली जैसी परहेज़गार हस्ती का ख़ून आसानी से बहाया जा सकता है। अगर उम्मत की सरदारी और हिदायत के लिए दुनियावी कामों में मक्कारी, चापलूसी, कोताही, नाइंसाफ़ी, झूठ और इस्लामी वेल्यूज़ से आँख मूँद लेना कसौटी बन जाए तो ज़ाहिर है कि यज़ीद जैसा शख़्स सलतनत पर बिराजमान हो ही जाएगा और इब्ने ज़ियाद जैसा इंसान, इराक़ की सबसे बड़ी शख़्सियत बन जाएगा।

आज की दुनिया, झूठ, जुल्म, शहवत परस्ती और रूहानियत को पीछे रखने वाली दुनिया है। ये है आज की दुनिया और ऐसा सिर्फ़ आज ही नहीं हो रहा है बल्कि दुनिया में सदियों से रूहानियत कमज़ोर रही है। इस रूहानियत को ख़त्म करने के लिए बाक़ायदा कोशिशें की गईं हैं, क़ुदरतमंदों व दौलतमंदों और सरमाया दारों ने दुनियावी सिस्टम का एक जाल पूरी दुनिया में फैलाया है जिसकी लीडरशिप बड़ी-बड़ी ताक़तें कर रही हैं। सबसे ज़्यादा झूठी, सबसे ज़्यादा मक्कार, इंसानी हुक़ूक़ को सबसे ज़्यादा बर्बाद करने वाली और इंसानों के लिए सबसे ज़्यादा बेरहम हुकूमत इस सिस्टम की बागडोर संभाले हुए है, ये है हमारी दुनिया की हालत। ●

HK

KAZIM
zari art

All Kinds of
Sarees, Suits
& Lehanga Chunri

Hata Dhannu Beg
Kazmain Road
Lucknow

Call:
0522-2264357
9839126005

इमाम सज्जाद अ०

वाक़िअ-ए-करबला के बाद 43 साल इमाम ज़ैनुल आबेदीन अ० ने बहुत सख़्त हालात का सामना बड़े सब्र और हिम्मत से किया। इस तमाम मुद्दत में आप दुनिया के शोर-शराबे और हंगामों से अलग सिर्फ़ दो कामों में अपने रात दिन बसर करते थेः एक ख़ुदा की इबादत दूसरे अपने बाबा पर गिरया, यही आपकी मजलिसें थीं जो ज़िंदगी भर जारी रहीं। आप जितना अपने बाबा के मसाएब को याद करके रोए हैं दुनिया में इतना किसी ने गिरया नहीं किया, हर-हर वक़्त पर आपको इमाम हुसैन अ० की मुसीबतें याद आती थीं, जब खाना सामने आता था तब रोते थे, जब पानी सामने आता था तब रोते थे, हुसैन अ० की भूख-प्यास याद आ जाती थी तो अक्सर इस शिद्दत से गिरया व ज़ारी फ़रमाते थे और इतनी देर तक रोते रहते थे कि घर के दूसरे लोग घबरा जाते थे। एक बार किसी ने पूछा कि आख़िर कब तक रोइएगा तो आपने फ़रमाया कि जनाब याक़ूब के बारह बेटे थे, एक बेटा ग़ायब हो गया तो वह इतना रोए कि आँखें जाती रहीं, मेरे सामने तो अटठारह अज़ीज़ो अक़ारिब जिनके जैसा दुनिया में कोई नहीं, क़त्ल हो गए हैं, मैं कैसे न रोऊँ!

यूँ तो ये रोना बिल्कुल नेचुरल था मगर इसके साए में बड़े पुरअमन तरीक़े से इमाम हुसैन अ० की मज़लूमियत और शहादत का तज़किरा ज़िंदा रहा और इमाम ज़ैनुलआबिदीन अ० के इतने ज़्यादा गिरए के चर्चे के साथ इमाम हुसैन अ० की शहादत के वाक़िआत का तज़किरा भी लोगों की ज़बानों पर आता रहा। अगर इमाम रोने के अलावा कोई और तरीक़ा करबला के वाक़िए को लोगों तक पहुंचाने के लिए अपनाते तो उस वक़्त की हुकूमत की पॉलीसी के ख़िलाफ़ होने की वजह से उसे रोक दिया जाता।

दूसरी गिरफ़्तारी

इतनी पुर-अम्न ज़िंदगी के बावजूद शाम की हुकूत को अपने मक़सद में हज़रत सज्जाद अ० से नुक़सान पहुँचने का ख़तरा हुआ। इब्ने मरवान ने अपनी हुकूमत के ज़माने में आपको गिरफ़्तार कराके मदीना से शाम की तरफ़ बुलवाया। और दो तीन दिन आप शाम में क़ैद रहे मगर ख़ुदा की क़ुदरत थी और आपकी रूहानियत का असर था जिससे अब्दुल मलिक ख़ुद शर्मिंदा हो गया और मजबूर होकर हज़रत ज़ैनुल आबेदीन अ० को मदीने वापस भेज दिया।

अख़लाक़ और किरदार

पैग़म्बरे ख़ुदा अ० की मुबारक नस्ल की यह ख़ुसूसियत थी कि बारह लोग लगातार एक ही तरह के इंसानी कमाल और बेहतरीन अख़लाक़ के साथ दुनिया के सामने आते रहे जिनमें से हर एक अपने वक़्त में दुनिया वालों के लिए बेहतरीन नमूना था। इस सिलसिले की चौथी कड़ी जनाब सैय्यद सज्जाद अ० थे जो अख़लाक़ और किरदार में अपने बुज़ुर्गों की यादगार थे। अगर एक तरफ़ आपके सब्र और बर्दाश्त का जलवा करबला में नज़र आया तो दूसरी तरफ़ शराफ़त और बख़शिश की सिफ़त अपनी ऊँचाईयों पर थी। आप अलग-अलग मौक़ों पर ख़ुद को बुरा-भला कहने वालों से जिस तरह पेश आए हैं उस से साफ़ ज़ाहिर है कि आप उस कमज़ोर इन्सान की तरह नहीं थे जो डर कर और अपने को मजबूर समझकर बर्दाश्त से काम ले बल्कि आप सामने वाले को माफ़ करते हुए अपने अमल से उसकी मिसाल पेश करते थे। एक शख़्स ने आप से बहुत सख़्त लहजे में बात की और बहुत से ग़लत अलफ़ाज़ आपके लिए इस्तेमाल किये। हज़रत ने फ़रमाया, ''जो कुछ तुम ने कहा है अगर वह सही है तो ख़ुदा मुझे माफ़ करे और अगर ग़लत है तो ख़ुदा तुम्हें माफ़ कर दे। इस बुलन्द अख़लाक़ी का ऐसा असर पड़ा कि उसने सर झुका दिया और कहा कि हक़ीक़त ये है कि जो कुछ मैंने कहा वही ग़लत था। ऐसे ही एक और मौक़े पर एक आदमी ने आपकी शान में बहुत ही ग़लत अलफ़ाज़ इस्तेमाल किए। इमाम ने इस तरह बेतवज्जोही की कि जैसे कुछ सुना ही नहीं। उसने पुकार कर कहा कि मैं आपको ही कह रहा हूँ। इमाम का यह बर्ताव इशारा था क़ुरआन के हुक्म की तरफ़ यानि माफ़ करने को इख़्तियार करो, अच्छे कामों की हिदायत करो और जाहिलों से बेतवज्जोही करो।

एक शख़्स था हिशाम इब्ने इस्माईल जिसने हज़रत अ० की शान में कुछ नागवार बातें की थीं। ये ख़बर बनी उमैय्या के एक नेक बादशाह उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ तक पहुँची। उसने हज़रत को लिखा कि मैं उस को सज़ा दूँगा। आपने फ़रमाया कि मैं नहीं चाहता कि मेरी वजह से उसको कोई नुक़सान पहुँचे।

आपके अंदर लोगों की मदद करने का जज़्बा ऐसा था कि रातों को ग़ल्ला और रोटियाँ अपनी पीठ पर रख कर ग़रीबों के घरों पर ले जाते थे और बांटते थे। बहुत से लोगों को ख़बर भी नहीं होती थी कि ये सब कौन दे जाता है। जब आपकी शहादत हुई उस वक़्त उन्हें पता चला कि ये इमाम ज़ैनुलआबिदीन अ० थे जो उनकी मदद किया करते थे। अमल की इन ख़ूबियों के साथ आपका इल्म भी ऐसा था जो दुश्मनों को भी सर झुकाने पर मजबूर कर देता था और सबका मानना था कि आपके ज़माने में आपसे बड़ा कोई आलिम नहीं है। इन सारी ज़ाती बुलन्दियों के साथ आप दुनिया को ये पैग़ाम भी देते थे कि बड़े ख़ानदान का होने पर नाज़ नहीं करना चाहिए। ●

गुलों में रंग भरे...

■ इंजीनियर हसन रज़ा नक़वी

इस बार हम ज़िंदगी के अहम तरीन दौर में दाख़िल हो रहे हैं। यह दौर दो वजहों से बहुत ख़ास है: एक तो यह कि 14 साल से 21 साल तक के बच्चे ही किसी भी क़ौम का Future होते हैं यानी ज़िंदगी का असली रास्ता चुनने का यही वक़्त होता है। दूसरे इस उम्र में ख़ुद बच्चे अपने आपको बड़ों में गिनने लगते हैं मगर बड़े उनको अपनाने और अपने में शामिल करने से कतराते हैं और बच्चे उनको बच्चा मानने को तैयार नहीं होते। नतीजे में ज़रा सी लापरवाही उन्हें Frustrate कर सकती है। एक तरफ़ सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदारी का दौर, दूसरी तरफ़ अपनी कोई पहचान यानी Social Identity नहीं। इस उम्र के बच्चों का दौर Adolenscent-Period कहलाता है। आमतौर से 13 साल से 19 साल तक के बच्चे इस में गिने जाते हैं यानी Teenagers। स्कूल में आठवीं क्लास से प्रोफ़ेशनल कोर्स में दाख़िल होने का ज़माना माना जा सकता है। जैसा कि पहले ज़िक्र आ चुका है कि अब आठवीं क्लास के नम्बरों पर ही Trade Specialization की बुनियाद है तो बात यहीं से शुरु की जाए।

हो सकता है कि बच्चा Maths में बहुत अच्छा हो और उसका शौक़ भी Engineering वग़ैरा में जाने का हो मगर Exams में Maths में नम्बर ख़राब आ जाएं। इसकी कई वजहें हो सकती हैं जैसे Paper के पहले बीमार हो गया, उसी दिन मेहमान आ गए, रात भर ख़ूब पढ़ा (जो ग़लत है), पर्चा देते वक़्त दिमाग़ उड़ गया, सवाल ही समझ में नहीं आया वग़ैरा। (यह हिन्दुस्तान में Education System की ख़राबी का हिस्सा है) उसके सारे Subjects में नम्बर अच्छे आए मगर Maths में कम हो गए। अब ज़्यादातर स्कूल उसे Maths नहीं लेने देंगे। यह एक मिसाल है कि बच्चा कैसे System का शिकार हो गया और बर्बाद हो गया। इस बात पर हाथ झाड़ के नहीं बैठना है बल्कि ज़िम्मेदारी को और ज़्यादा समझना है। इस पर हम आगे बात करेंगे।

इस उम्र के बच्चे ख़ास तौर से लड़के सब से पहला बेवकूफ़ अपने अब्बा को समझते हैं और सबसे ज़्यादा भरोसा दोस्तों पर करते हैं मगर हमारे वतन में एक अच्छी बात यह है कि माँ को भी दोस्त ही समझते हैं, उन्हीं से लड़ते भी हैं और उन्हीं की मानते भी हैं। इसलिए सबसे ख़ास रोल माँ का नज़र आता है। उसे मामता के साथ बहुत होशियार भी रहना है बेहतर यह है कि पैरेंट्स आपस में उसकी अच्छाई और बुराई पर ग़ौर करें और बच्चे तक बातें माँ के ज़रिए पहुँचाई जाएं। क्योंकि बच्चा भी इस उम्र में अपनी ज़्यादातर बातें माँ के ज़रिए ही बाप तक पहुँचाता है। माँ को बहुत Balance की ज़रूरत है यानी न हर बात माने और न हर बात रद्द कर दे। बच्चियों में बहुत सारे ऐसे मसले होते हैं जो बाप से कहे ही नहीं जा सकते इसलिए बाप को बेटी के मामलों में घुसना भी नहीं चाहिए यहाँ तक कि दीनी कामों पर अमल करने में भी।

मासूमीन फ़रमाते हैं कि बच्चा जब 14-15 साल का हो जाए तो उस से ज़िंदगी के और घर के मामलों में मश्वरा करो। अगर मश्वरा ग़लत है तो उसे बताओ कि क्यों ग़लत है। इस से आगे चल कर उसे अपने फ़ैसले करने में मदद मिलेगी। उसे अपने साथ ख़रीदारी करने, घर का सौदा लाने, घर में आए मेहमानों के साथ कुछ वक़्त देने की आदत डलवाएं। कभी अपने साथ, कभी अकेले। इस से बच्चे में Self-Confidence, तमीज़ और अच्छा-बुरा समझ में आएगा। यह बातें माओं के लिए अहम हैं, उनको यह समझना चाहिए कि बाप को ख़ुदा ने घर का सरपरस्त बनाया है तो कुछ अच्छा ही होगा। ख़ासकर बच्चों से बाप अगर कुछ मुश्किल काम करने को कहे तो आम तौर से

माओं को तकलीफ़ होती है जो लड़के को आगे तकलीफ़ पहुँचाता है। Higher Education के बाद भी Mama's boy या Papa's girl की ज़िंदगी ज़्यादातर ख़राब ही गुज़रती है।

मक़सद यह है कि जब बच्चा Teenage में आ जाए (13 to 19) तो उसे अपने काम ख़ुद करने दें मगर उन पर नज़र रखें। इमाम अली[अ०] फ़रमाते हैं कि पाँच साल की उम्र तक बच्चों को पनपने दो। फिर उन्हें आदाब और तमीज़ सिखाओ और फिर उन पर निगरानी रखो वैसे ही जैसे एक माली अपने पौधों की निगरानी करता है। कब पानी देना है, कब खाद और कब छटाई करनी है। यहाँ छटाई का मतलब यही है कि 'हर' अच्छी और बुरी ख़्वाहिश पूरी न करें, कुछ जाएज़ ख़्वाहिशें भी शर्तों के साथ पूरी करें। जैसे स्कूल जाने के लिए बाइक चाहिए, तो कहा जा सकता है कि हाइस्कूल में चार Subjects में Distinction होगी तो बाइक मिल जाएगी... वग़ैरा

यहाँ तक तो वह बातें हुईं जो अकेले हमारी ज़िम्मेदारियाँ हैं। अब वह बातें जिनमें जो ज़िम्मेदारियाँ तो बच्चे की हैं मगर निगरानी हमारी चाहती हैं...कुछ इस इशू में, बाक़ी इंशाअल्लाह अगली बार।

पढ़ाई अपने आप में ख़ुद एक Management का नाम है। जिसमें सबसे काफ़ी Time Management है। 13-14 साल के बच्चे अपने आपको समझ सकते हैं अगर उन्हें एहसास दिलाया जाए तो!

तीन तरह के Subjects से उन्हें वास्ता पड़ता है: (1) Main Subjects (2) Optionals (3) Language। Mains तो ख़ुद उन्हीं की पसंद और Prefrence की वजह से मिला है इसलिए वह ख़ास भी हैं और नाज़ुक भी। ज़रा से Over Confidence से सब बिगड़ सकता है। Optional और Language के बारे में ज़्यादातर बच्चे लापरवाह होते हैं। आम तौर पर सुनने को मिलता है "कल या दो दिन के बाद इंग्लिश, हिन्दी या EVS वग़ैरा का पेपर है। अरे यह नम्बर नहीं जुड़ते, बाक़ी तैयार है।" यह Subjects सिर्फ़ नम्बर जोड़ने या पास होने के लिए नहीं हैं बल्कि यह आपके Professional Courses में Balancing Wheels का काम करते हैं और आपको अलग से Identify कराते हैं। जैसे एक बच्चा Bio-Group में चला गया और PMT में भी Select हो गया। अब उसके साथ हर लड़का उसी जैसा है। सब Exams दे रहे हैं, सब के नम्बर आ रहे हैं, किसी के कम किसी के ज़्यादा और सब सफ़ेद कोट पहन कर कालेज में टहल रहे हैं। ऐसे में एक लड़का या लड़की अलग से कैसे नज़र आएगा? यह सिर्फ़ तब होगा जब अपने Subjects के अलावा उसे दूसरे Subjects की भी अच्छी जानकारी होगी। दूसरी ज़बानें भी जानता होगा, या Culture, Sports वग़ैरा में भी होगा। तब उस कालेजे के बच्चों में उसका एक Presentation उसे लम्हों में पूरे कालेज में मशहूर कर सकता है और यह Social Status उसके अंदर ऐसा Confidence और ऐसा चस्का पैदा करेगा कि वह सारी ज़िंदगी उसे इस्तेमाल कर सकता है और कामयाबियाँ पा सकता है।

आख़िरी बात यह कि दोस्तों के Selection में पैरेंट्स ज़रूर ध्यान देते रहें। इस उम्र में जैसा शुरु में कहा गया है कि बच्चे, न तो बच्चे माने जाते हैं न बड़े, इसलिए वह अपनी उम्र के साथियों में ही अपना भला-बुरा तय करने लगते हैं और साथ ही उन्हें हर काम की जल्दी भी रहती है यानी Fast Buck चाहते हैं। दोस्तों पर वक़्त भी बहुत ख़र्च करते हैं और घर का माहौल अगर बहुत सख़्त या बिखरा-बिखरा है तो फिर क़यामत ही आ जाती है। अब इस सूरत में या तो बच्चे बहक जाते हैं या इन्तेहाई संगीन अमल सोचने लगते हैं। इसलिए Balance बहुत ज़रूरी है। पैरेंट्स अगर लड़ते रहते हैं तो बच्चे Confused भी रहते हैं और यह तो आदत की वजह से लड़ते हैं मगर बच्चा सुकून की तलाश में घर से भागने लगता है और फिर बाहर की दुनिया तो इसी उम्र के लिए सारे Attractions और लज़्ज़तें सजाए बैठी है कि कब शिकार आए और हम उसका मासूम वुजूद और रौशन फ़्युचर लूट लें.....

औरत

पाकीज़ा हक़ों की तलाश में नापाक इरादों की शिकार

■ अली मुर्तज़ा ज़ैदी

इन्सानी हिस्ट्री में मर्दों ने ही नहीं बल्कि ख़ुद औरत ने भी औरत पर ज़ुल्म ढाए हैं। कहीं उसको चारदीवारी में क़ैद करके उसके सारे राईट्स छीन लिए गए और कहीं उसकी हैसियत और शख़सियत को मानने से इन्कार कर दिया गया। औरत को इस ज़ुल्म का एहसास हुआ और उसने अपने राईट्स को पाने और आज़ादी हासिल करने के लिए जब कारख़ानों में काम करना क़ुबूल किया तो इससे एक और अलग तरह का ज़ुल्म शुरु हो गया। एक ही काम के लिए मज़दूरी पर रखे जाने वाले मर्द और औरत की सैलेरी में क़रीब आधे का फ़र्क़ रखा गया। एक ख़ास मक़सद की वजह से औरत की सैलेरी को एक एक्सट्रा इन्कम गिनाया गया ताकि यह नाइंसाफ़ी छुपाई जा सके। फ़ैक्ट्री में काम करने वाली औरत को भी यह अंदाज़ा था कि हज़ारों दूसरी औरतें भी इसी काम के लिए बेताब हैं। इसलिए वह आधी मज़दूरी पर राज़ी रहीं। यूँ कारख़ानेदार के कई बुनियादी काम बन गए। इन में से एक यह था कि सस्ते और ख़ामोश मज़दूर का मसला औरत के ज़रिए हल हो गया।

औरत की कमाई ने ख़र्चों में ज़बरदस्त बदलाव पैदा कर दिया। मर्द और औरत के नेचर के फ़र्क़ की वजह से बाज़ार को नए रुख़ दिए गए। तजुर्बेकार कारोबारी नज़रों ने जल्दी ही भांप लिया कि औरत की आमदनी को किस तरह ख़र्च करवाया जाए और किस तरह इसे आम डिमांड से बढ़ा कर ज़रूरत में बदला जाए। औरत के इसी मिज़ाज से फ़ायदा उठाने के लिए फ़ैशन की शुरूआत हुई। अब हालत यह हुई कि अगर एक सूट ख़रीदा गया है जो आम हालात में छः महीने के लिए काफ़ी था और ख़रीदार को अगले छः महीने तक नए सूट की ज़रूरत नहीं पड़ती थी तो अब शायद यह दो महीने बाद ही नए मॉडल और डिज़ाइन के आने की वजह से नया सूट ख़रीदा जाने लगा। यूँ पैदावार में ज़बरदस्त बढ़ोत्तरी हो गई और साथ ही मुनाफ़ा भी बढ़ता चला गया। फ़ैशन का यह फ़ाएदा देखते हुए उसके बाद सरमायादार ज़ेहनियत की डिमांड पूरी होती चली गई। लिबास से बढ़कर दुनिया की हर चीज़ में फ़ैशन और मॉडल की छाप पड़ गई और डिमांड बढ़ाने के लिए हर चीज़ का मॉडल दिया जाने लगा और उसका फ़ायदा वही था जो कपड़ों में था यानी और पैदावार और ज़बरदस्त मुनाफ़ा।

औरत का रोल बल्कि यूं कहिए कि यह 'निगेटिव रोल' यहीं तक नहीं रहा। कुछ ही दिनों बाद मीडिया से फ़ायदा उठाते हुए औरत के इस निगेटिव रोल को बढ़ावा दिया गया। बाज़ार में फैलाव और तेज़ी लाने के लिए औरत को एडवर्टाइज़मेंट में इस्तेमाल किया जाने लगा। यूं औरत की ख़ूबसूरती और उसका ज़ाहिरी हुस्न, चीज़ों को ख़रीदने और बेचने का एक ज़रिया बन गया। अपने हक़ों की तलाश में घर से निकलने वाली औरत मॉडल गर्ल बन गई और बाज़ारी चीज़ों में से वह भी एक चीज़ बन गई। फिर वह वक़्त भी आया कि ख़ुद बिकाऊ माल बन गई और अपनी इज़्ज़त के सौदे करने लगी। यह वह कुछ है जो पश्चिमी कल्चर में औरत के साथ पेश आया और आज भी पश्चिमी दुनिया की सूरते हाल इससे

बेहतर नहीं है।

आज की औरत एक अजीब कशमकश का शिकार है। एक ग्रुप है जो उसे आज़ादी दिलाना चाहता है और कहता है कि अब तक औरत पर बेतहाशा जुल्म हुआ है, उसे क़ैद कर दिया गया था, महरूम रखा गया था, उसके हक़ छीन लिए गए थे लेकिन अब वक़्त बदल गया है। अब औरत एजुकेटेड है और अब यह औरत का हक़ है कि उसे उसका अपना मुक़ाम मिले। औरत को चाहिए कि इस क़ैद से आज़ाद हो, पर्दे और घर की पाबंदियां तोड़ दे, और अपना हक़ मनवा ले। इस ग्रुप के पास अपना एक प्रोग्राम है, रिर्सोसेस हैं और इस प्रोग्राम पर अमल करवाने की ताक़त भी है। दूसरी तरफ़ भी कुछ ग्रुप हैं जिनमें से कुछ का कहना है कि कोई जुल्म नहीं हुआ है बल्कि जो कुछ भी हुआ वह औरत की भलाई में हुआ। और कुछ का कहना है कि जुल्म बहेरहाल हुआ है लेकिन हक़ क्या है और उसे हासिल करने का तरीक़ा क्या है इसमें बहेरहाल इख़्तेलाफ़ है।

हम समझते हैं कि हमारा ताअल्लुक़ इस तीसरे ग्रुप से है। हमारे ख़्याल में ज़रूरी है कि हक़ीक़ी इस्लामी टीचिंग्स की रोशनी में इंसानी समाज में औरत के रोल को नए ज़माने के हिसाब से पेश किया जाए और अपनी फ़िक्रों व ख़्यालों को इस्लाम के नाम पर थोपने के बजाए हक़ीक़ी इस्लामी सोच पेश करने की कोशिश की जाए। इसी कोशिश के बीच एक और अहम मसला भी हल होना चाहिए और वह मर्द व औरत की बराबरी और उसका बुनियादी फ़र्क़ है।

हक़ीक़त में अलग-अलग दौर में औरत को गुमराहियों की तरफ़ ले जाने में इस मसले का अपना एक ख़ास रोल है। ऐसा लगता है कि अलग-अलग दौर में इस सवाल के ज़रिए औरत के जज़बात को उभारा गया और बराबरी के नाम पर औरत को इस्तेमाल किया गया। समाज में औरत के रोल के मसले में इस्लामी टीचिंग्स को समझने के लिए हम इसी बात से अपनी बात शुरु करते हैं और हम इस बहस को तीन बुनियादी बातों की सूरत में पेश करना चाहते हैं।

अ- औरत और मर्द के बुनियादी फ़र्क़ या उनकी बराबरी के बारे में इस्लाम की राय क्या है?

ब- इस्लामी समाज में औरत के मेन रोल क्या हैं?

स- इसी बैक ग्राउंड में औरत के हक़ और उसकी ज़िम्मेदारियाँ क्या हैं?

अ- औरत और मर्द के बुनियादी फ़र्क़ या उनकी बराबरी के बारे में इस्लाम की राय क्या है?

इस बहेस की शुरूआत यह है कि दुनिया क्यों बनाई गई, पहले इसको समझा जाए ताकि उसकी रौशनी में देखा जाए कि मर्द और औरत अलग-अलग हैं या एक ही मख़लूक़ हैं। बहुत सी जगहों पर क़ुरआने करीम ने इस बात पर ज़ोर दिया है कि इंसान ख़ुदा की सबसे अफ़ज़ल मख़लूक़ है और कायनात की बाक़ी मख़लूक़ की तरह इसको भी बे मक़सद पैदा नहीं किया गया है। इस्लाम ने सारी इंसानियत के लिए मक़सदों को तय किया है और सबसे बड़ा मक़सद ''कमाल'' का हासिल होना बताया है जिसे ''तज़किए नफ़्स'' या ''तहज़ीबे नफ़्स'' कहा जाता है। इस्लामी टीचिंग्स की स्टडी से साफ़ हो जाता है कि इंसानियत की बुनियाद या उसके मक़सदों में औरत व मर्द में कोई बड़ा फ़र्क़ नहीं है। इस नज़रिए को और साफ़ करने के लिए तीन स्टेज में बराबरी बयान की गई है:

1- पैदाईश में बराबरी: ''इन्सानो! हमने तुम्हें एक मर्द और औरत से पैदा किया है। फिर तुम में शाख़ें व क़बीले बना दिए हैं ताकि आपस में एक दूसरे को पहचान सको। बेशक तुम में से अल्लाह के नज़दीक ज़्यादा इज़्ज़त वाला वही है जो ज़्यादा परहेज़गार है।'' (1)

इस तरह साफ़ लफ़्ज़ों में बयान कर दिया कि पैदाइश के हिसाब से सारी इंसानियत की शुरुआत एक ही है। अब अगर कोई सोचे कि औरत कोई पस्त और छोटी मख़लूक़ है तो सारी इंसानियत में यह पस्ती पाई जाती है और कोई भी मर्द इससे अलग नहीं है। सच्चाई यह है कि औरत, इंसानियत और बड़ाई में मर्द के बराबर है और इन दोनों में इस लिहाज़ से कोई फ़र्क़ नहीं है। इस साफ़ आयत के होते हुए यह बहेस बेकार है कि जनाबे हव्वा को हज़रत आदम[अ०] की पस्ली से पैदा किया गया या किसी और मिट्टी से। हव्वा की पैदाईश कैसी ही हो, सारी इंसानियत में उनका असर है। इसलिए आज का कोई मर्द आज की किसी औरत पर फ़ज़ीलत नहीं रखता, कसौटी

सिर्फ़ तक़्वा है।

2- सवाब व अज़ाब में बराबरीः ''जो शख़्स भी नेक अमल करेगा वह मर्द हो या औरत, शर्त यह है कि ईमान वाला हो, हम उसे पाकीज़ा ज़िंदगी अता करेंगे और उन्हें उन आमाल से बेहतर जज़ा देंगे जो वह ज़िंदगी में अंजाम दे रहे थे।'' (2)

इस आयत ने मर्द और औरत के ज़ाहिरी फ़र्क़ को मिटा कर साबित किया कि जज़ा के मौक़े पर भी, अगर जज़ा का मेयार हासिल कर लिया गया तो मर्द व औरत एक ही जज़ा पाएंगे, न मर्द को ज़्यादा दिया जाएगा और न औरत को कम। इस तरह यह पैदाइश में भी बराबर हैं और जज़ा भी बराबर पाएंगे। एक और आयत में ख़िलक़त और जज़ा दोनों में बराबरी को यूँ बयान किया गया है।

''मैं तुम में से किसी भी अमल करने वाले के अमल को बर्बाद नहीं करूंगा चाहे वह मर्द हो या औरत।'' (3)

इस बारे में क़ुरआन में और भी आयतें बयान की गई हैं। (सूरए मोमिन/40, सूरए निसा 124) ख़िलक़त और जज़ा में इसी बराबरी का नतीजा है कि क़ुरआने करीम बार-बार उन लोगों को बुरा कहता है जो लड़कियों को दफ़्न कर दिया करते थे। (सूरए नहल/59, सूरए तकवीर/9)

3- इरादा व इख़्तियारः ऊपर बयान की गई बातों की तरह इस्लाम ने इरादा व इख़्तियार और ज़िंदगी के अहम फ़ैसलों के सिलसिले में भी औरत को आज़ादी दी है। इसलिए उसे हक़ है कि वह अपने लिए कमाए और ख़र्च करे। क़ुरआने करीम में है, ''हर एक के लिए उसकी हासिल की हुई नेकियों का फ़ायदा भी है और उसकी बुराईयों का नुक़सान भी।'' (4)

यहाँ तक की बातों से अच्छी तरह साफ़ है कि इस्लाम ज़िंदगी के अहम मौक़ों पर पैदाइश से लेकर क़यामत तक औरत और मर्द को एक ही नज़र से देखता है और उन्हें बराबरी का दर्जा देता है लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इन दोनों में कोई फ़र्क़ है ही नहीं। असल में औरत और मर्द के बीच जिस्मानी और ज़ेहनी फ़र्क़ एक ऐसी सच्चाई है जिसे अनदेखा किया ही नहीं जा सकता। यही वजह है कि मेडिकल साइंस की अलग-अलग फ़ील्ड्स में औरत और मर्द के लिए अलग-अलग क़ानून तय किए जाते हैं और उनके पैमाने अलग-अलग हैं। एक ही उम्र में मर्द और औरत के वज़न, क़द और ताक़तों में फ़र्क़ बताया गया है और इसी फ़र्क़ के पेशेनज़र अलग-अलग खेलों में औरत और मर्द के अलग-अग मुक़ाबले करवाए जाते हैं और अलग-अलग रिकार्ड तय किये जाते हैं। यह चीज़ इस हद तक साफ़ है कि दुनिया का कोई मुल्क ऐसा नहीं जिसमें यह फ़र्क़ न रखा जाता हो। इसी तरह ज़हनी लिहाज़ से भी यह फ़र्क़ साफ़ है। इसीलिए बच्चों की एजुकेशन व परवरिश के हवाले से दुनिया के क़रीब-क़रीब सारे मुल्कों में बच्चों की बिल्कुल शुरु की एजुकेशन के लिए हमेशा औरतों को बेहतर समझा जाता है इसीलिए प्राइमरी क्लासेस में कभी-कभार ही कोई मर्द नज़र आता है जो प्राइमरी क्लासेज़ के कोर्स में शिरकत करे। इस फ़र्क़ को देखते हुए जिस तरह खेलों में इन दोनों को बराबर मानना एक ''ज़ुल्म'' है उसी तरह समाजी उमूर में दोनों को बिना फ़र्क़ के ज़िम्मेदारियां दे देना इससे कहीं बढ़ कर ज़ुल्म है। ज़िम्मेदारियों के इसी फ़र्क़ की तरफ़ इशारा करते हुए क़ुरआने करीम में है, ''ख़बरदार! जो अल्लाह ने कुछ लोगों को कुछ लोगों से ज़्यादा दिया है उसकी तमन्ना न करना। मर्दों के लिए वह हिस्सा है जो उन्होंने कमाया है और औरतों के लिए वह हिस्सा है जो उन्होंने हासिल किया है। अल्लाह से उसका फ़ज़्ल मांगते रहो। बेशक वह हर चीज़ का जानने वाला है।'' (5)

औरत और मर्द के इसी फ़र्क़ की वजह से अल्लाह ने समाजी ज़िम्मेदारियों में इन दोनों की ज़िम्मेदारियों में फ़र्क़ रखा है। अपनी पैदाइश के मक़सद को पूरा करने, इस्लामी अहकाम की इताअत, तक़्वा और परहेज़गारी और दूसरी बुनियादी ज़िम्मेदारियों में बराबर होने के साथ-साथ हुकूमत और अदालत में औरतों की ज़िम्मेदारियां अलग-अलग रखी गई हैं। इस फ़र्क़ की बुनियाद भी नेचर ही है।

1-सूरए हुजरात/13, 2-सूरए नहल/97, 3-सूरए आले इमरान/195, 4-सूरए बक़रा/286, 5-सूरए निसा/32

दोमाही مؤمّل لکھنؤ

دوماہی مؤمّل لکھنؤ

उमदा तबाअत	عمدہ طباعت
आसान ज़बान	آسان زبان
क़ुर्आनी मालूमात	قرآنی معلومات
अख़्लाक़ी बातें	اخلاقی باتیں
आर्ट गैलरी	آرٹ گیلری
इस्लामिक पज़ल	اسلامک پزل
कामिक्स	کامکس

آج ہی ممبر بنئے
زرسالانہ
Rs.150

द्विमासिक मुअम्मल लखनऊ
MUAMMAL

AL-MU'AMMAL CULTURAL FOUNDATION
546/203 Near Era's Lucknow Medical College
Sarfarazganj, Hardoi Road, Lucknow-3 U.P. (India)
Ph.: 0522-2405646, 9839459672
email: muammal@al-muammal.org

बच्चे झूठ क्यों बोलते हैं?

■ बुतूल अज़रा फ़ातिमा

इंसान कमज़ोर पैदा होता है। वह बेसहारा होता है, उसे गाइडेंस की ज़रुरत होती है, उसे मदद की ज़रुरत होती है, उसे अक़्लमंदी और समझदारी की ज़रुरत होती है। जो चीज़ें बच्चे की पैदाइश के वक़्त उसके पास नहीं होती हैं वह उसे जिस्मानी और ज़ेहनी ग्रोथ के साथ-साथ एजुकेशन से मिलती हैं और एजुकेशन की पहली शुरूआत माँ की गोद से होती है। बच्चा ज़िंदगी का पहला सबक़ वहीं सीखता है।

आज की साइंस ने अपनी रिसर्च से यह साबित किया है कि बच्चे की ज़ेहनी, अख़लाक़ी और जिसमानी परवरिश की सही जगह स्कूल और कॉलेज नहीं बल्कि माँ की गोद और घर का माहौल है। इसलिए घर के माहौल का बच्चे पर बहुत गहरा असर पड़ता है। बच्चा बहुत सारी बातें अपने माँ-बाप और घर के लोगों से ही सीखता है। उनके तौर तरीक़े की नक़्ल करने की कोशिश करता है जो बाद में उसकी पर्सनॉलिटी का हिस्सा बन जाते हैं। घर के माहौल से वह प्यार-मोहब्बत और हमदर्दी करना सीख जाता है। सेलफ़िश, बेईमानी, झूठ और नफ़रत के जज़बात को भी घर ही में जान लेता है। अगर माँ-बाप और घर के लोग रिलेजियस, पढ़े लिखे, नेक चलन वाले, अच्छे अख़लाक़ वाले हों और घरेलू हालात भी अच्छे हों तो यह कहा जा सकता है कि बच्चे वहाँ अच्छी बातें ज़रुर सीखेंगे।

ज़्यादातर माँ-बाप को यह शिकायत रहती है कि वह अपने बच्चों से सेटिसफ़ाईड नहीं हैं। उनके बच्चे झूठ बोलते हैं, कहना नहीं मानते, बड़ों की इज़्ज़त नहीं करते, पढ़ाई नहीं करते, ग़लत क़िस्म के प्रोग्राम देखते हैं। ऐसी औलाद माँ-बाप के लिए अज़ाब बन जाती है। उन्हें सुधारने के लिए माँ-बाप बहुत से तरीक़े अपनाते हैं लेकिन उसका असर उलटा ही होता है। ग़लत काम करने पर और झूठ बोलने पर बच्चों को डाँटा जाता है। कभी मार-पीट कर धमकाया भी जाता है या कभी पैरेंट्स थोड़ी देर के लिए नाराज़ भी हो जाते हैं या कभी सबके सामने उनकी शिकायत करके उन्हें शर्मिंदा कर देते हैं। यह सभी तरीक़े अच्छे नहीं हैं। इन सबके अलावा एक रास्ता और रह जाता है वह है प्यार का। यह तरीक़ा काफ़ी असरदार होता है।

झूठ बोलना एक तरह की ज़ेहनी बीमारी मानी जाती है। मगर क्या इससे छुटकारा पाना आसान है?

बच्चा झूठ क्यों बोलता है? ग़लत ख़बरें क्यों पहुँचा रहा है? क्या बच्चों को झूठ बोलने से रोका जा सकता है? क्या इसका भी कोई इलाज है?

हाँ! दुनिया में कोई बुराई ऐसी नहीं है जिसके पीछे कोई रीज़न या मजबूरी न हो। उसको समझना और उसे दूर करना ही किसी बुराई का अस्ल इलाज है। बढ़ती हुई उम्र के साथ-साथ बच्चा नई बातें सीखने की क्वालिटी की वजह से झूठ बोलने की आदत भी डाल लेता है। अगर इसका फ़ौरन इलाज नहीं किया गया तो यह मुश्किल जड़ पकड़ लेगी।

झूठ का इलाज

(1) अक्सर बच्चों से ग़लती हो जाती है लेकिन इसकी वजह बच्चे के पास नहीं होती, हमारे पास होती है। जब हम अपनी ज़िंदगी का जायज़ा लेंगे तो पता चल जाएगा कि हम जान-बूझकर या अनजाने में बच्चों को झूठ बोलना सिखा देते हैं। जैसे दरवाज़े पर कोई आता है तो बच्चे से कहलवा दिया जाता है कि कह दो पापा घर पर नहीं हैं। यह जानते हुए भी कि यह ग़लत है और बच्चे पर इसका क्या असर पड़ेगा, इसके बावजूद भी हम बच्चे को झूठ सिखाते हैं। इसी तरह और भी बहुत सी चीज़े सामने आएंगी अगर हम अपनी लाइफ़ को देखेंगे।

(2) बच्चा चाहे एक महीने ही का क्यों न हो, उसे गोश्त का टुकड़ा नहीं समझना चाहिए बल्कि यह याद रखना चाहिए कि वह घर के माहौल की एक-एक हरकत अपने दिल व दिमाग़ में बिठा रहा है। बच्चा एक कैमरे की तरह होता है वह जो कुछ देखता और सुनता है उसकी पिक्चर्स और वीडियोज़ अपनी मेमोरी में सेव कर लेता है भले ही वह इस वक़्त कुछ न कर सकता हो लेकिन इसका उसकी आगे की ज़िंदगी पर निगेटिव या पॉज़िटिव असर ज़रुर पड़ता है। इसलिए इस्लाम ने बच्चे के पैदा होने के बाद सबसे पहले उसके कान में बाबरकत आवाज़ें पहुँचाने के लिए कहा है। बच्चे के पैदा होने के बाद सबसे पहले उसके दाएं कान में अज़ान और बाएं कान में इक़ामत कहना सुन्नत है। इसके बाद हमारा फ़रीज़ा यह है कि हम बच्चे को नासमझ समझकर या यह कि उसमें सूझ-बूझ नहीं है, ऐसा सोचकर ऐसे काम और बातें न करें जिनसे बचना ज़रूरी है। साइंस का भी यही मानना है कि बच्चा एक कैमरे की तरह है। हम जैसा करेगें बच्चे भी वैसा ही करेंगे। इसलिए हमें बच्चों के सामने मज़ाक़ में भी झूठ नहीं बोलना चाहिए क्योंकि बच्चों के अंदर चाहे सूझ-बूझ न भी हो लेकिन उनके अंदर हमारे एक-एक एक्ट को क़ुबूल करने का जज़बा बराबर मौजूद होता है।

(3) बच्चे के ऐब कभी भी उसके मुँह पर मत कहिए और न ही उसकी कमज़ोरियों को याद दिलाकर उसे शर्मिंदा कीजिए। डांटने, मारने या शर्मिंदगी दिलाने से बच्चे के दिल में कभी

भी सुधरने का ख़्याल नहीं आएगा। अगर बच्चे में कोई कमी हो या उसने झूठ बोला हो तो उसे सबके सामने शर्मिंदा नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे दूसरों के मुक़ाबले में ज़्यादा हमदर्दी और प्यार की ज़रुरत होती है ताकि वह ख़ुद को सुकून वाले माहौल में पा सके। हमदर्दी और हौसला बढ़ाने से निकम्मे से निकम्मे बच्चे के अंदर भी बहुत बड़ा चेंज लाया जा सकता है। बच्चे को शबाशी दीजीए! ज़रा सी तारीफ़ और थोड़े से ध्यान से ज़िंदगी का रुख़ बदल जाएगा। हाँ! जब उसमें कुछ समझ आ जाए तो थोड़ा बहुत झूठ बोलने पर सज़ा भी दी जा सकती है।

(4) बच्चे चाहे कितने ही अच्छे क्यों न हों लेकिन उनकी सोसाइटी से कभी भी लापरवाह नहीं होना चाहिए। बच्चे को अच्छे माहौल के साथ-साथ अच्छे दोस्तों के साथ की भी ज़रुरत होती है। ख़राब बच्चों की कम्पनी से उसे दूर रखा जाना चाहिए। उसे अच्छे दोस्तों की पहचान भी बताना ज़रुरी है ताकि वह अच्छे ही दोस्तों के साथ रहे। ख़राब दोस्त बुरी आदतें पैदा करने की वजह बनते हैं।

(5) बच्चों को अच्छी मिसालों और कहानियों के ज़रिए और अच्छे तरीक़ों से झूठ के नुक़सानों के बारे में समझाना चाहिए।

(6) झूठ दो तरह के होते हैं। एक तो यह कि बच्चा छोटा और नासमझ होता है तो उसे इतनी समझ नहीं होती कि वह क्या कह रहा है। दूसरा यह कि वह जब थोड़ा बड़ा हो जाए तो उसे अपनी नाराज़गी से यह समझाना चाहिए कि उसने झूठ बोला है जो आपको पसंद नहीं है। माँ-बाप को अपने तौर तरीक़ों से बच्चों को यह एहसास दिलाना चाहिए कि झूठ बोलने से उनकी कितनी बेइज़्ज़ती हुई है। इस बात से आप काफ़ी गुस्से में और नाराज़ हैं।

(7) छोटी-छोटी बातों पर डांटने से बच्चों के अंदर डर बैठ जाता है। जिससे उनके अंदर सच बोलने की हिम्मत नहीं होती। इसलिए वह अपने मक़सद को हासिल करने के लिए झूठ का सहारा लेते हैं। इसलिए कोशिश कीजीए कि वह आपके सामने अपनी बात आज़ादी से कह दें ताकि ऐसी नौबत ही न आए कि उन्हें झूठ बोलना पड़े।

(8) बच्चों की जायज़ ख़्वाहिशों और ज़रुरतों को उनकी पसंद के मुताबिक़ पूरा किया जाए। जब गुस्सा करने की ज़रुरत हो तो अपनी नाराज़गी की वजह बताएं और साथ ही प्यार-मोहब्बत से भी पेश आएँ। वरना बच्चे को माँ-बाप की तरफ़ से झूठ बोलने की शह मिलेगी।

नहजुल असरार

नहजुल बलाग़ा पार्ट-2

■ सै. आले हाशिम रिज़वी

मरयम मैगज़ीन के सितम्बर 2011 इशू में अमीन हैदर हुसैनी का आर्टिकिल 'नहजुल बलाग़ा का शार्ट-इंट्रोडक्शन' छपा था, जो ज़ाहिर है मरयम के सभी रीडर्स को पसंद आया होगा। आइए इस बार मैं आपका इंट्रोडक्शन उस किताब से कराता हूँ जिसे नहजुल बलाग़ा पार्ट-2 भी कहा जा सकता है। दरअसल यह किताब जिसका नाम नहजुल असरार रखा गया है, हज़रत अली[अ] की ही उन हदीसों, बयानों, इरशादों और ख़तों का कलेक्शन है जिन्हें नहजुल बलाग़ा में अल्लामा सैय्यद रज़ी ने शामिल नहीं किया था। यह बात ख़ुद अल्लामा रज़ी ने ज़ाहिर कर दी थी कि नहजुल बलाग़ा में हज़रत अली[अ] का सारा कलाम मौजूद नहीं है। बल्कि नहजुल बलाग़ा में अल्लामा रज़ी ने अपना कलेक्शन हज़रत अली[अ] के ख़ास कलाम को ध्यान में रख कर किया था। इस कलेक्शन में अल्लामा ने उस ज़माने का भी ध्यान रखा था। अगर आज के मार्डन ज़माने का जदीद इल्म, साइंस और टेक्नोलॉजी भी उनके ध्यान में होती तो शायद वह उन मुश्किल टॉपिक्स को भी नहजुल बलाग़ा में ज़रूर शामिल कर लेते जो हज़रत अली[अ] के मार्डन इल्म का आईना हैं।

नहजुल असरार सुल्तानुल उलमा मौलाना रज़ा आक़ा साहब की मेहनतों का नतीजा है। नजफ़े अशरफ़ से वापसी के बाद यह उनका पहला क़लमी शाहकार है जो हज़रत अली[अ] के पोशीदा कलाम के कलेक्शन की सूरत में मंज़रे आम पर आ चुका है। नहजुल असरार को पाकिस्तान में पब्लिश किया जा रहा है। इस किताब के पब्लिशर हैदराबाद, पाकिस्तान की मशहूर शख़्सियत जनाब मोहम्मद बशारत अली हैं। इस किताब के पेज न. 88 पर हदीसे नूरानी के उनवान से हज़रत अली फ़रमाते हैं, "मैं इब्राहीम हूँ, मैं मूसा हूँ, मैं ईसा हूँ और मैं मोहम्मद हूँ, जिस सूरत में चाहूँ मैं अपने को बदल लेता हूँ जिसने मुझे देखा इन सूरतों को देखा।" इस तरह की तमाम हदीसें और इरशादात जो शायद पहले आपने न सुने और न पढ़े हों, नहजुल असरार में दर्ज हैं। इस नायाब कलेक्शन में अल्लामा रज़ा आक़ा ने जिन किताबों से मदद ली है उनमें ख़ास तौर पर सुलैम बिन क़ैस, मोहम्मद बिन याक़ूब, हाफ़िज़ अबू नईम, शेख़ सुलेमान, अल्लामा मोहम्मद बाक़िर मजलिसी और अल्लामा शेख़ सुदूक़ वग़ैरा की किताबें शामिल हैं।

नहजुल असरार उर्दू और हिन्दी में ट्रांसलेट की जा चुकी है। अलग-अलग किताबों में हज़रत अली[अ] के बिखरे हुए उन इरशादात और बयानात को जो नहजुल बलाग़ा में मौजूद नहीं हैं, नहजुल असरार में पढ़कर बहुत सारे लोगों की यह ग़लतफ़हमी दूर हो जाएगी कि इमाम अली[अ] का कलाम नहजुल बलाग़ा तक ही लिमिटेड है। सुल्तानुल उलमा मौलाना सैय्यद गुलाम हुसैन रज़ा आक़ा साहब की 12 सालों की मेहनत 'नहजुल असरार', हज़रत अली[अ] के चाहने वालों के लिए यक़ीनन एक बेहतरीन तोहफ़ा है।

सज़ा

■ गुलज़ार फ़ातिमा

बच्चों की परवरिश माँ-बाप के लिए एक चैलेंज है, चाहे वह छोटे हों या फिर जवानी की तरफ़ क़दम बढ़ा रहे हों, उनकी देख-भाल ज़रूरी होती है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह होता है कि उनकी परवरिश का अंदाज़ बदल जाता है। जब कोई नन्हा-मुन्ना सा वुजूद किसी के घर में आँखें खोलता है तो बिल्कुल ऐसा लगता है जैसे बहार आ गई हो, माँ-बाप की ख़ुशियों का कोई ठिकाना नहीं होता है, घर और ख़ानदान वाले भी उनको ख़ुश देखकर ख़ुश हो जाते हैं। बेशक यह हर माँ-बाप का की ज़िंदगी का यादगार दिन होता है लेकिन इन ख़ुशियों के साथ-साथ फ़िक्रें भी माँ-बाप की ज़िंदगी में आ जाती हैं। खाने, पीने और सोने से लेकर पढ़ाने लिखने तक की फ़िक्र, आगे चलकर बच्चा क्या बनेगा, इसकी फ़िक्र। जब तक बच्चा चलना और बोलना नहीं सीखता तब तक पैरेंट्स को इसी हद तक फ़िक्र होती है कि उसे क्या खिलाएं और किस तरह बात करें ताकि बच्चा जिस्मानी लिहाज़ से सेहतमंद हो और जल्दी से जल्दी चलने लगे, बोलने लगे। लेकिन जैसे ही बच्चा बोलना शुरु करता है तो माँ-बाप ख़ुश हो जाते हैं। लेकिन यह ख़ुशी ज़्यादा देर तक बाक़ी नहीं रह पाती। बच्चा अपनी ज़बान से कुछ ऐसी बातें करने लगता है जो बअदबी में गिनी जाती हैं जैसे बच्चा झूठ बोलने लगता है या गालियाँ बकने लगता है और एक दो बार मना करने, समझाने के बाद पैरेंट्स का हौसला जवाब दे देता है। ख़ासकर अगर किसी दूसरे ने यह कह दिया कि "आप का बच्चा कितना बदतमीज़ है" तो बच्चे की शामत आ जाती है। बात डाँट-फटकार से बढ़कर मार-पीट तक पहुँच जाती है। क्या यह सही है? क्या बच्चों को उनकी ग़लती पर मारना चाहिए? इस सवाल का जवाब अलग-अलग लोगों से पूछने पर जवाब भी अलग-अलग मिलते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि मारना बहुत ज़रूरी है और कुछ लोग मारने के मुख़ालिफ़ हैं। उनका कहना है कि बच्चों की ग़लतियों को इग्नोर कर देना चाहिए, वह ख़ुद ही ठीक हो जाते हैं। क्या यह जवाब सही हैं? क्या इन पर भरोसा किया जा सकता है? अगर भरोसा करें भी तो किस पर, मारने पीटने वाली बात पर या इग्नोर कर दिए जाने पर? आइए! देखें कि इस्लाम इस बारे में क्या कहता है?

सज़ा और जज़ा, यानी अच्छे काम का इनाम और बुरे काम पर सज़ा, यह इस्लामी परवरिश में एक तय शुदा उसूल है। ख़ुद जन्नत और जहन्नम का होना, नबियों का बशारत देना और डराना, क़ुरआन में जन्नत की नेमतों और जहन्नम की सख़्तियों का ज़िक्र ... यह सारी बातें इस बात को साबित करती हैं कि सज़ा और जज़ा का होना अच्छी परवरिश के लिए बहुत ज़रूरी है। अगर ऐसा न हो, अच्छे और बुरे दोनों एक ही निगाह से देखे जाएं तो इसके नतीजे में बुरे लोगों की हिम्मत बढ़ेगी और अच्छे लोगों के हौसले पस्त हो जाएंगे और आख़िर में बुराई को बढ़ावा मिलेगा और अच्छाई कम या ख़त्म हो जाएगी।

सज़ाः इस्लाम की नज़र में

इस्लाम ने सज़ा को परवरिश के एक ज़रिए के तौर पर माना है। इस के लिए तीन तरह से सज़ाएं ज़िक्र हुई हैं। (1) ग़ैर मुद्दती सज़ाः डराना-धमकाना

(2) जिस्मानी सज़ाः जेल, जिला वतनी, क़त्ल, जिस्म के किसी हिस्से को काटना, कोड़े लगाना (3) ताज़ीरात और इलाही हदों का जारी होना

सज़ा का मक़सद

इस्लाम ने सज़ाएं यूँ ही तय नहीं की हैं बल्कि इसका मक़सद है (१) मुजरिमों को आगे जुर्म करने से रोकने और समाज में अम्नो अमान बनाने के लिए (२) दूसरों को सबक़ देने के लिए ताकि वह जुर्म करना छोड़ दें। (३) तक़्वा हासिल होने के लिए और नफ़्स की पैरवी से बचने के लिए।

बच्चों को मारना-पीटना

दो हदीसें नमूने के तौर पर पेश हैं जिसके बाद फ़ैसला करने में आसानी हो जाएगी कि बच्चों के साथ उनकी ग़लतियों पर कैसा बर्ताव करें।

(1) इमाम काज़िम[अ] ने फ़रमाया है, "अपने बच्चों को न मारो बल्कि उस से अपनी नाराज़गी का इज़हार करो लेकिन याद रहे यह नाराज़गी ज़्यादा लम्बी न होने पाए।"

इस हदीस से तीन बातें सामने आती हैं:- (A) बच्चों को न मारना (B) अगर वह ग़लती करें तो उन पर नाराज़ होकर उन्हें एहसास दिलाना (C) ज़्यादा देर तक उन से नाराज़ न रहना क्योंकि फिर वह अपने पैरेंट्स की नाराज़गी के आदी हो जाएंगे जिसके नतीजे में बच्चों पर अपने पैरेंट्स की नाराज़गी का असर नहीं होगा।

इस हदीस में सातवें इमाम ने बहुत ही नाज़ुक पहलू की तरफ़ इशारा किया है और वह यह कि बच्चों की सबसे अच्छी सज़ा यह है कि उन पर नाराज़गी का इज़हार किया जाए क्योंकि बच्चा अपने माँ-बाप को बहुत चाहता है और उस से उनका ख़फ़ा होना बर्दाश्त नहीं होता। इसके लिए वह हमेशा यही कोशिश करता है कि वह उस से नाराज़ न हों क्योंकि पैरेंट्स की ज़रा सी भी बेतवज्जोही उसे परेशान कर देती है।

(2) इमाम मोहम्मद बाक़िर[अ] फ़रमाते हैं, "अगर किसी ऐसे शिया जवान को मेरे पास लाया जाता जिसको दीनी अहकाम न आते हों, तो मैं उसे मारपीट के ज़रिए तकलीफ़ पहुँचाता।"

यह हदीस ज़ाहिर में तो पहले वाली हदीस के मुख़ालिफ़ है, क्योंकि पहले वाली हदीस में मारने से मना किया गया है जबकि इस हदीस में ख़ुद पाँचवें इमाम[अ] मारने की बात कर रहे हैं, लेकिन हक़ीक़त यह है कि इन दोनों हदीसों में कोई टकराव नहीं है। पहली हदीस आम परवरिश में मारने पर पाबंदी लगा रही है और दूसरी हदीस यह बता रही है कि अगर बच्चों की दीनी परवरिश में मारने की ज़रूरत भी पड़े तो बच्चों को बेशक मारा-पीटा जा सकता है। लेकिन एक बात ध्यान देने वाली है कि इस्लाम ने जहाँ बच्चों को मारने की इजाज़त दी है वहीं "दियत" भी तय की है यानी अगर मार इतनी ज़्यादा हो कि बच्चे का बदन लाल हो जाए तो उसकी "दियत" दी जाना चाहिए। दियत का मतलब होता है कि मारने के हर्जाने के तौर पर इस्लाम की तरफ़ से तय की हुई रक़म की अदाएगी।

सज़ा की क़िस्में

ज़बान के ज़रिए सज़ा देना

(1) धमकीः बच्चों के बार-बार ग़लती करने पर उन्हें आगे किसी चीज़ से महरूम कर देने की धमकी। जैसे अगर बच्चा होमवर्क न कर रहा हो तो उसे यह धमकी दी जाए कि "अगर तुम ने होमवर्क नहीं किया तो तुम्हें खेलने की इजाज़त नहीं मिलेगी"।

(2) डांट-फटकारः अगर धमकी असर न करे तो हल्की-फुल्की डांट-फटकार के ज़रिए उसको सज़ा देना, लेकिन अगर ज़्यादा सख़्ती से डांटा जाए तो बच्चे पैरेंट्स की ज़िद में भी दोबारा इस ग़लती को कर सकते हैं।

कुछ ख़ास बातें

सज़ा चाहे जो भी हो लेकिन उसमें कुछ बातों का ख़याल रखना बहुत ज़रूरी है।

(1) लोगों के बीच सज़ा न दी जाए।

(2) पहले बच्चों को सही-सही रास्ता बताया जाए। अगर वह उस पर अमल न करें तब उनसे पूछ-गछ की जाए।

(3) हर ग़लती की सज़ा नहीं होती जैसे अगर बच्चे से कोई ग्लास टूट जाए या सिर्फ़ उसका पानी गिर जाए तो उसे सज़ा नहीं देना चाहिए क्योंकि उसने ग़लती ही नहीं की है, ऐसा तो किसी से भी हो सकता है।

(4) रसूले ख़ुदा[स] ने फ़रमाया कि बच्चों और नौजवानों के बहुत से कामों (यानी छोटी-मोटी ग़लतियों को) इग्नोर कर दो।

(5) कभी भी बच्चों को ऐसे काम की सज़ा न दी जाए जिसको वह कर ही नहीं सकता।

(6) सज़ा फ़ौरन नहीं देना चाहिए बल्कि पहले यह देख लेना चाहिए कि ग़लती क्यों हुई है। जैसे बच्चा अगर कपड़े को प्रेस से जला ले तो यह देखना चाहिए कि वह यह तो नहीं चाहता था कि कपड़ा जलाए बल्कि उसकी नियत तो यह थी कि इस तरह अपने माँ-बाप का हाथ बटाए। यहाँ पर समझाने की ज़रूरत है कि अभी उसे यह काम नहीं करना चाहिए था, उसका हाथ भी जल सकता था।

(7) माँ-बाप दोनों मिलकर सज़ा न दें।

(8) बच्चों को सज़ा मिलने की वजह मालूम होनी चाहिए क्योंकि अगर उसे सज़ा तो मिले मगर ग़लती का पता न हो तो वह बच्चा ज़हनी बीमारी का शिकार हो जाता है। साइंस के ज़रिए यह बात साबित हुई है कि बहुत सी ज़हनी बीमारियाँ इसी वजह से पैदा होती हैं कि सज़ा मिलने की वजह बच्चों को मालूम ही नहीं होती। एक छोटे बच्चे की मिसाल ले लें जिसको इस बात की तमीज़ नहीं है कि पेशाब कहाँ करना चाहिए। वह अपने सारे काम किसी भी वक़्त और किसी भी जगह कर लेता है। सोने, उठने, बैठने से लेकर पेशाब करने तक अगर अपने बच्चे को किसी मेहमान की गोद में पेशाब करने पर मारा जाए तो उसे यह पता नहीं चल सकेगा कि उस से यह ग़लती हुई है कि उसे मेहमान की गोद में पेशाब नहीं करना चाहिए था बल्कि वह यह समझेगा कि उसे पेशाब ही नहीं करना चाहिए था। इसके नतीजे में जब भी उसे पेशाब करने की ज़रूरत होगी तो वह रोकना चाहेगा जिसकी वजह से जिस्मानी और ज़हनी दोनों तरह की मुश्किल पैदा हो सकती है।

बच्चों पर मारपीट का असर

यह बात तो साफ़ है कि मारपीट के ज़रिए परवरिश करना एक ग़लत काम है और अगर मारपीट की ज़रूरत भी है तो उसकी भी हद

इस्लाम ने तय कर दी है क्योंकि मारपीट का बच्चों पर निगेटिव असर भी होता है जैसे-

(1) जो मार खाता है वह चाहे कुछ सीखे या न सीखे, यह ज़रूर सीख लेता है कि किस तरह ज़बरदस्ती मारपीट के ज़रिए अपनी बात मनवाई जा सकती है।

(2) मार खाने वाला काम्प्लेक्स का शिकार हो जाता है। जैसे यह वाक़िआ। मैंने एक बच्ची से पूछा कि तुम आगे चल कर क्या बनना चाहती हो तो उसने मुझे जवाब दिया कि मैं बड़ी होकर गुस्से वाली टीचर बनना चाहती हूँ। मुझे यह जवाब सुनकर हंसी आ गई क्योंकि टीचर बनने के साथ-साथ वह गुस्से वाली टीचर बनना चाहती थी। मैंने दोबारा सवाल किया कि आख़िर वह क्यों ऐसी टीचर बनना चाहती है तो उसका जवाब बड़ा ही अजीब था लेकिन हम बड़ों के लिए एक बहुत बड़ा सवाल। उसने कहा ताकि मैं भी बड़ी होकर सब बच्चों को डांट सकूँ और मार सकूँ।

(3) मार खाकर बच्चा तौहीन का एहसास करता है जिसके बहुत सारे नुक़सान हैं। दसवें इमाम ने इस बारे में फ़रमाया है कि अगर किसी को हिक़ारत का एहसास हो जाए (ख़ुद को हक़ीर समझने लगे) तो उससे बचो।

यह तो कुछ ही नमूने थे जो यहाँ बयान हुए हैं वरना किताबें ऐसी बहुत सी बातों से भरी पड़ी हैं जो यह बताती हैं कि मारपीट का बच्चों पर क्या असर होता है।

वैसे सज़ा देने और न देने वाले पैरेंट्स को चार क़िस्मों में बांटा जा सकता है:

(1) वह पैरेंट्स जिनको अपने बच्चों की कोई ग़लती नज़र ही नहीं आती। अगर कोई दिखाना भी चाहे तो बचपना कहकर टाल देते हैं।

(2) वह पैरेंट्स जिनको हर बात में अपने बच्चों की ग़लती नज़र आती है। अगर वह कहीं से मार खाकर भी आए तो उसकी ग़लती यह होती है कि वह वहाँ गया ही क्यों था।

(3) वह पैरेंट्स जिन्हें यूँ तो कोई ग़लती नज़र नहीं आती लेकिन अगर किसी ने यह एहसास दिलाना चाहा कि आपके बच्चे से यह ग़लती हुई है तो वह बच्चे को इतनी बेदर्दी से पीटते हैं कि ग़लती का एहसास दिलाने वाले को वह चोट ख़ुद पर पड़ती महसूस होती है।

(4) वह पैरेंट्स जिन्हें ग़लती करने पर ग़लती नज़र आती है और अच्छाई करने पर अच्छाई और वह यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि किस वक़्त बच्चे के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए।

वैसे आप किस ग्रुप के पैरेंट्स में आते हैं? अगर इसका जवाब आप किसी को देना पसंद न करें तो कोई बात नहीं लेकिन ख़ुद को इस सवाल का जवाब ज़रूर दें। ख़ुदा से दुआ है कि वह हम सबको बेहतरीन पैरेंट्स के ग्रुप में शुमार करे।

कर्बला

आज मैं आपको अपनी कहानी सुनाना चाहती हूँ। वैसे आज मैं बहुत मशहूर हूँ, सब मुझे जानते-पहचानते हैं लेकिन बहुत पहले मैं एक चटयल बयाबान थी। मुझ पर कोई हरयाली नहीं थी। पुराने वक़्तों में मुझे ''खुदा का हरम'' कहा जाता था। मेरे आस-पास कोई आबादी नहीं थी। मुझसे काफ़ी दूर एक गांव था जिसे लोग ''नेनवा'' कहते थे। इस गांव में खजूरों के बाग़ थे। मैं जब वहां की ज़मीन को देखती थी तो मेरा भी दिल चाहता कि काश कभी ऐसा हो कि मेरे ऊपर से भी साफ़ पानी का चश्मा बह रहा हो। मैं भी हरी-भरी हो जाऊँ। लेकिन दिन रात यूँ ही गुज़रते रहे और मैं बयाबान ही रही। मैं बिल्कुल तन्हा थी। बस कभी-कभी कोई घुड़सवार मुझ पर से गुज़र जाता था। एक रोज़ एक शख़्स अपनी बहुत बड़ी फ़ौज के साथ मेरे ऊपर से गुज़रने लगा। ज़ोहर का वक़्त था। सूरज की गर्मी से मेरा वुजूद गर्म था। वह शख़्स अपनी फ़ौज के साथ रुक गया। सबने नमाज़ अदा की। फिर उसने मेरे ऊपर से एक मुठ्ठी मिट्टी उठाई और अपनी फ़ौज को दिखाते हुए कहने लगा, ''इस मिट्टी पर एक ऐसा गिरोह आकर ठहरेगा जो बिना हिसाब-किताब के जन्नत में दाख़िल हो जाएगा।''

जन्नत का नाम सुनकर मैं ठंडे मीठे पानी और हरे-भरे पेड़ों की याद में खो गई। मुझे लगा जैसे मैं कभी आबाद हो जाऊंगी। बरसों गुज़र गए। एक रात मेरे ऊपर उगने वाली सूखी झाड़ियां नींद में डूबी हुई थीं कि ऊंटों के गले में बंधी घंटियों और घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज़ें आने लगीं। मर्द आपस में बातें कर रहे थे। आधा चांद आसमान से झांक रहा था। सुबह होने वाली थी। मुझे बड़ी फ़िक्र हो रही थी कि आख़िर क्या बात है? मेरी सूखी झाड़ियाँ ऊँटों और घोड़ों के पैरों तले रौंदी जा चुकी थीं। जब सुबह की रौशनी फैली तो मैंने देखा कि एक नूरानी चेहरे वाला शख़्स वहां मौजूद है जिसके आस-पास कुछ लोग जमा हैं।

मुझे दूसरी तरफ़ एक ग्रुप और नज़र आया जिसके हाथों में तलवारें और नेज़े थे। इन नेज़ाबरदारों के सरदार ने कहा कि मुझे हुक्म दिया गया है कि आपको और आपके रिश्तेदारों को इसी बयाबान में रोक लूँ।

मैं समझ गई कि वह मेरे मेहमान बनेंगे। इन लोगों को देखकर मुझे वह सिपाहसालार याद आ रहे थे जिन्होंने कई साल पहले अपनी फ़ौज के साथ मेरे ऊपर नमाज़ अदा की थी। ख़ास तौर पर उस गिरोह के कमाण्डर और यह कमाण्डर दोनों बिल्कुल एक जैसे थे। मुझे बाद में पता चला कि वह और यह दोनों बाप-बेटे थे।

मैंने देखा कि वह नूरानी चेहरे वाला मर्द अपने रिश्तेदारों को तसल्ली दे रहा था। बच्चों को प्यार कर रहा था। औरतों से कह रहा था कि बच्चों का बहुत ख़्याल रखो। एक रात उसने एक सवार को रवाना किया। फिर कुछ जान-पहचान के लोग आए। मैंने उन्हें पहले भी कई बार देखा था। यह मेरे आस-पास के गांव के लोग थे। वह मेहरबान शख़्स उन्हें अपने ख़ेमे में ले गया। कुछ देर उनके साथ बातचीत की। फिर कुछ रक़म उनके हवाले की। जब गांव वालों को पता चला कि यह रक़म साठ हज़ार दिरहम है तो उन्हें बड़ा ताज्जुब हुआ। मैं समझ गई कि इस मेहरबान शख़्स ने साठ हज़ार दिरहम के बदले में मुझे इन लोगों से ख़रीद लिया है। मैं बहुत ख़ुश थी। मैं समझ रही थी कि शायद यह मेहरबान शख़्स मुझे आबाद करना चाहता है। मैं ख़ुशी से फूली नहीं समा रही थी लेकिन...

जब उस मेहरबान शख़्स ने मुझे ख़रीदने के बाद दोबारा उन ही लोगों को तोहफ़े में दे दिया तो मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। मेहरबान मर्द ने उन लोगों से दरख़्वास्त की कि जब लोग यहाँ आएं तो उन्हें मेरी क़ब्र का रास्ता बता देना और जो भी मेरी क़ब्र की ज़ियारत के लिए आए उसे तीन दिन अपना मेहमान रखना। मैं बड़ी परेशान थी और समझ में नहीं आ रहा था क्या होने वाला है। यह मेहरबान मरने की बात कर रहा था।

दो तीन रोज़ यह लोग मेरे मेहमान रहे। फिर उनकी तादाद कम होने लगी। जब कि दूसरी तरफ़ फ़ौज बढ़ती ही चली गई। मुझे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि आख़िर यह हथियार से लैस इतनी बड़ी फ़ौज इन गिनती के कुछ लोगों से, इन बच्चों और औरतों से क्या चाहती है? यह लोग ग्रुपों में अपने जानवरों को लेकर आ रहे थे और पानी से सैराब करते जा रहे थे लेकिन इस अच्छे और मेहरबान ग्रुप के लोगों को यहाँ तक कि बच्चों को भी वहाँ से पानी लेने की इजाज़त नहीं देते थे। मेरा

दिल चाहता था कि काश मेरे बस में होता तो मैं दिल खोल कर इन लोगों को सैराब करती। जब प्यास की सख़्ती से रोने वाले बच्चों की आवाज़ें आतीं तो मैं भी उनके साथ रोने लगती लेकिन मैं कुछ भी नहीं कर सकती थी।

मुझे अच्छी तरह याद है कि वह छोटा सा मेहरबान नूरानी गिरोह सिर्फ़ कुछ दिन मेरा मेहमान रहा। दिन-बदिन उन लोगों की प्यास बढ़ती ही रही। गर्मी की सख़्ती से यह लोग तड़पते रहे। उनके हलक़ बिल्कुल सूख चुके थे। कुछ बच्चे रात के वक़्त मेरी नर्म रेत इकट्ठी करके अपने बदन पर रखते ताकि शायद इस रेत की हल्की सी नमी से अपनी प्यास बुझा सकें और गर्मी की सख़्ती में कमी ला सकें। कभी-कभी मैं उन्हें देखती कि यह बच्चे किस तरह अपनी प्यासी निगाहें सामने बहते हुए दरिया पर लगाए हुए हैं। इस बीच उनके कई लोग दरिया की तरफ़ गए ताकि पानी ले आएं लेकिन दूसरी तरफ़ की ज़ालिम फ़ौज ने उन्हें पानी नहीं लेने दिया। नौ की रात को कुछ नौजवान दोबारा नहर की तरफ़ गए ताकि पानी ले आएं, अभी वह लोग ख़ेमों तक पहुंचने भी नहीं पाए थे कि दूसरी फ़ौज की तरफ़ से तीर आए जो मशकीज़ों पर लगे और सारा पानी बह गया। उनकी मश्कों से पानी के क़तरे मेरे ऊपर टपक रहे थे जिस से मेरी प्यास भी बढ़ने लगी। घुड़सवार चिल्लाते हुए उस मेहरबान ग्रुप की तरफ़ आते। वह हमला करना चाहते थे। वह इस मेहरबान ग्रुप के ख़ेमों को बर्बाद करना चाहते थे। बच्चे रो रहे थे। मर्द हाथों में तलवारें लिए अपनी औरतों और बच्चों का बचाव कर रहे थे। अभी फ़ौज ख़ेमों से कुछ ही दूर थी कि मेहरबान शख़्स ने अपने कुछ दोस्तों को उनकी तरफ़ भेजा और पैग़ाम भिजवाया कि आज रात की उन्हें मोहलत दी जाए ताकि अपने ख़ुदा की इबादत कर सकें।

जब सूरज निकला तो मोहर्रम की दस तारीख़ थी। मेरा दिल चाहता था कि आज के दिन सूरज की किरनें मुझ पर न पड़ें। मुझे दिन की रौशनी से डर लग रहा था। आधी रात को देखा कि मेहरबान मर्द ख़ेमों को समेट रहे हैं। मुझे कुछ सुकून मिला कि यक़ीनन यह लोग रात को यहां से चले जाना चाहते थे। मुझे बिल्कुल पसंद नहीं था कि यह लोग यहां क़त्ल कर दिए जाएं? लेकिन मेहरबान शख़्स ने कहा कि सारे ख़ेमे टीले पर ले जाएं जाएं। ख़ेमों के आस-पास ख़ंदक़ खोदी जाए और उसमें लकड़ियां भर दी जाएं। मैं समझ गई कि यह लोग मुक़ाबला करना चाहते हैं। जब सूरज निकला तो ज़बरदस्त जंग शुरू हुई। मेहरबान शख़्स के साथी एक-एक करके आते और कहते, "या हुसैन! हमें इजाज़त दे दीजिए कि अपनी जान आप पर फ़िदा कर दें।" फिर वह मैदान में चले जाते। मुझे आज तक उनके क़दमों की चाप सुनाई देती है। वह धीरे-धीरे क़दम उठाते हुए जाते। इतनी जंग करते कि उनके बदन में मौजूद ख़ून का आख़िरी क़तरा भी मेरे अंदर जज़्ब हो जाता।

अब मैं कोई बयाबान नहीं रह गई थी। मैं मज़लूमों की आबादी बन चुकी थी। मेहरबान शख़्स के साथी कम थे और दुश्मन बहुत ज़्यादा लेकिन वह लोग अपनी कम तादाद के बावजूद लगातार अपना बचाव कर रहे थे। बहादुरी के साथ लड़ रहे थे। यहां तक कि उनके बच्चे भी क़त्ल कर दिए गए। अब वह मेहरबान शख़्स अकेला रह गया था। और उसके साथ एक और सेहतमंद लम्बे क़द का एक जवान आदमी। मोहर्रम का दसवां दिन आधा हो चुका था। बच्चे बहुत प्यासे थे। वह सब मिलकर इस ख़ूबसूरत और सेहतमंद नौजवान के पास पहुंचे और कहने लगे, "चचा जान! हमें पानी चाहिए।"

उस दिन बहुत गर्मी थी। वह मर्द बच्चों से पानी का वादा करके हाथ में मश्क थामे घोड़े पर सवार नहर की तरफ़ गया लेकिन फिर वापस न आया।

मैं आज तक उन मासूम बच्चों की प्यासी आंखों को भुला नहीं सकी हूं। जब वह जवान वापस न आया तो मेहरबान शख़्स के चेहरे पर झुर्रियां पड़ गईं। उसकी कमर एक दम झुक गई। उसके सर और दाढ़ी के बाल एक दम सफ़ेद हो गए अब वह बिल्कुल अकेला रह गया था, बिल्कुल अकेला। मैं भी ग़मगीन थी। मैं नहीं चाहती थी कि वह मेहरबान शख़्स भी चला जाए लेकिन मैंने देखा वह धीरे-धीरे क़दम उठाता अपनी कमर पर हाथ रखे घोड़े की तरफ़ बढ़ा। उसका सफ़ेद घोड़ा बहुत ही ख़ूबसूरत था। वह जैसे-जैसे ख़ेमों से दूर होता गया मेरे अंदर अकेलेपन का एहसास भी बढ़ता चला गया।

मैं सोच रही थी कि क्या यह मेहरबान शख़्स भी मारा जाएगा? फिर इन मासूम बच्चों और बेगुनाह औरतों की रखवाली कौन करेगा? वह

नीचे की तरफ़ चला गया और जंग करने लगा। उसके ख़ून के क़तरे तेज़ी के साथ मेरे ऊपर गिरते चले गए। जब वह मेरे ऊपर गिरा तो दुश्मनों ने चारों तरफ़ से उस पर हमला कर दिया। ख़ेमों को आग लगा दी गई। औरतों और बच्चों के ताज़याने लगाए गए। जनाज़ों पर से लिबास और दूसरी चीज़ें उतार ली गईं। फिर वह लोग औरतों और बच्चों को एक साथ ले गए।

हर तरफ़ अंधेरा था, तारीकी थी, उदासी थी। अब मैं फिर से एक बयाबान थी जो शहीदों के ख़ून से लाल हो चुकी थी। अब मैं थी और शहीदों के बेसर लाशे। यह 72 नूरानी बदन बिना सरों के मुझ पर पड़े थे।

कुछ दिन बाद एक ग्रुप आया। उसके पास ऊँट थे। शायद यह मुसाफ़िर थे। उन्होंने जनाज़ों को मेरे अंदर दफ़न कर दिया। मुझे लगा जैसे क़ीमती मोती मेरे अंदर छुपा दिए गए हों। मैंने बयाबान में चलने वाली तेज़ हवाओं से कहा कि यह ख़बर सारे शहरों और क़बीलों तक पहुँचा दो। दिन, महीने और साल गुज़रते चले गए। फिर मैं धीरे-धीरे आबाद होने लगी। आस-पास से लोग रोते-पीटते आते और ख़ूब मजलिस मातम करते। अब मैं कोई बयाबान और बे-आबाद ज़मीन नहीं रह गई थी। हर दिन मेरे आस-पास आबादी बढ़ती चली गई। औरतें, बच्चे, मर्द, बूढ़े, जवान सब दूर-दूर के इलाक़ों से आते ताकि उन मज़लूमों की याद ताज़ा करें। उनकी क़ब्रों की ज़ियारत करें। उन्होंने क़ब्रों पर सायबान भी बना दिए। आने वालों में से कुछ लोग तो वापस ही नहीं गए। क़ब्रो के आस-पास ही झोंपड़ियाँ डाल कर रहने लगे। उन्होंने मेरे आस-पास में खजूरों के पेड़ भी उगाए। हर साल कहीं न कहीं से लोग आते और वापसी के बजाए मेरी मिट्टी से वहीं अपने अपने घर बन लेते। अब मैं बहुत मशहूर हो चुकी थी। सब मुझे उस मेहरबान शख़्स के नाम से याद करते। अब तो मैं उस गांव से ज़्यादा आबाद हो चुकी थी जिसे देखकर मुझे आबाद होने का अरमान था। अब मैं बहुत बड़े और आबाद शहर में बदल चुकी थी। मेरा नाम वही पुराना नाम है: "करबला"। मैं ईराक़ की रहने वाली हूँ। बहुत आबाद शहर हूँ। नहरे फ़ुरात मेरे पास से ही बहती है। मैं कूफ़े की पड़ोसी हूँ। मैं शहरे करबला हूँ। हर साल बल्कि हर रोज़ अनगिनत लोग यहां आकर मेरे मेहमान बनते हैं। उस मेहरबान शख़्स और उसके दोस्तों की यादें ताज़ा करते हैं। वह आने वाले अपने दिल की गहराईयों से आवाज़ें बुलंद करते हुए मजलिस व मातम करते हैं और कहते हैं!

या हुसैन^{अ}, या हुसैन^{अ}, या हुसैन^{अ}

आपके लैटर्स

Dear Editor,

I love to read Maryam. One day my father asked me to go through it. I was attracted by its outer cover and it made me too curious to finish it. It contains many wonderful topics for all age groups. Most Islamic Magazines use very difficult Urdu words but 'Maryam' is an exception. Many topics like 'Women Rights', 'Science' etc. are excellent.

I wish you good luck for future.

Butool Zehra
Mubarakpur, Akbarpur

मोहतरम एडिटर साहब!

सलामुन अलैकुम

दिल्ली में लड़कियों की दीनी तालीम के लिए हमारा एक मदरसा है। हमारे यहां मरयम मैगज़ीन की 8 कापियां आती है और इसे बड़े शौक़ से पढ़ा जाता है। सभी के लिए ख़ासकर लड़कियों के लिए इसमें बहुत अच्छी-अच्छी मालूमात होती हैं।

पिछला इशू तो बहुत ही अच्छा था। ख़ुदा आप सब की तौफ़ीक़ात में और इज़ाफ़ा करे! इलाही आमीन!

मौलाना तसव्वुर हुसैन जौहरी
दिल्ली

Assalamo Alekum

Wonderful magazine! Which has international standard. beautiful colours and designing. Specially articles are very thought-provoking, knowledgeful and meaningful which take us towards the right path of the religion.

I am sure, this magazine will go a long way, Inshallah.

Azra Andaleeb
Mumbai

ज़ैनब स०

तस्वीरे फ़ातिमा स०

■ सै. अमीन हैदर हुसैनी
बनारस

इंसान जब दुनिया में आता है तो उसके पास न इल्म होता है और न तजुर्बा। जैसे-जैसे ज़िंदगी की कठिनाईयों से गुज़रता है इल्म व तजुर्बे की वजह से उसके अंदर कमाल पैदा होता जाता है। वैसे तो इंसान के नेचर में यह बात पाई जाती है कि वह कमाल चाहता है। इसलिए वह हमेशा इस कोशिश में रहता है कि क्या करे जिस से उसके अंदर बुलंदी और कमाल पैदा हो जाए। क़ुरआन ने इंसान की इस ख़्वाहिश को सही रास्ते पर लगाने के लिए पैग़म्बरे अकरम स० को आईडियल बनाया है, "तुम्हारे लिए रसूल स० की ज़िंदगी में बेहतरीन नमूने-ए-अमल हैं"।[1]

यानी ख़ुदा यह बताना चाहता है कि देखो! अगर अपनी भलाई चाहते हो तो तुम्हें रसूले अकरम स० को अपना आईडियल बनाना होगा, उनके बताए हुए रास्ते पर चलना पड़ेगा, उनकी इताअत करनी होगी क्योंकि वही हैं जिनके अंदर सारे कमाल और अच्छाईयाँ जमा हो गयी हैं और उन्हीं की ज़ात हर तरह की बुराईयों से पाक है। मगर आप जहाँ पूरी इंसानियत के लिए आईडियल हैं वहीं आप अपनी बेटी हज़रत फ़ातिमा स० को 'दुनिया की औरतों की सरदार' का ख़िताब देकर अपने साथ-साथ औरतों के लिए भी एक औरत को आईडियल क़रार देते हैं। उधर हज़रत ज़हरा स० ने एक ऐसी बेटी की परवरिश की जो अपने बाप ही की नहीं बल्कि पूरे ख़ानदान की ज़ीनत नज़र आती है। यक़ीनन जनाबे ज़ैनब स० अपनी माँ की हू-बहू तस्वीर हैं। इसलिए आप भी दुनिया की औरतों के लिए एक बहतरीन नमूने-ए-अमल हैं।

हज़रत ज़ैनब इस्लामी हिस्ट्री की वह बुज़ुर्ग ख़ातून हैं जिन्हें बिल्कुल भुलाया नहीं जा सकता। आपने हज़रत अली अ० व जनाबे ज़हरा अ० के बाद उनकी सीरत पर अमल करते हुए उनके मक़सदों को एक नई ज़िंदगी बख़्शी। दीन और दीन के वारिसों की हिफ़ाज़त के लिए हर मुश्किल को बर्दाश्त किया। आपके ईसार व क़ुर्बानी की शुरुआत करबला से हुई है। इमाम हुसैन अ० ने जिस अज़ीम मक़सद के लिए क़ुर्बानी पेश की थी आपने शहादत के बाद उस मक़सद के साथ वक़्त के इमाम की भी हिफ़ाज़त की। अगर ज़ैनब अ० न होतीं तो शायद मैदाने करबला में चिराग़े हिदायत बुझ जाता। आप दूसरे एंग्लिस के अलावा इस एंग्लि से भी हज़रत ज़हरा अ० की हू-बहू तस्वीर थीं। आप जब तक ख़ामोश थीं तो जनाबे ज़हरा की मिसाल रहीं और जब आपने ज़बान खोली तो हज़रत अली अ० की तस्वीर बन गईं। हमारी माँ-बहनों के लिए आप एक बेहतरीन आईडियल हैं क्योंकि आपने इस्मत की गोद में परवरिश पाई है। ऐसी ख़ातून कि जिसका नाना मासूम, जिसका बाबा और माँ मासूम, जिसके दो भाई मासूम...यह शरफ़ शायद ही दुनिया की किसी औरत को मिला हो।

सच! जनाबे ज़ैनब स० ने ऐसा किरदार पेश किया है जिस से आप पूरी इस्लामी हिस्ट्री के लिए आईडियल बन गईं। बहादुरी ऐसी कि जिसने इस्लाम के दुश्मनों को घुटने टेकने पर मजबूर कर दिया, तक़रीर की ताक़त और गिरया ऐसा कि जिसने मुनाफ़िक़ों को ज़लील और रुसवा कर डाला। आपके ईमान व इरफ़ान, ईसार, बहादुरी और फ़िदाकारी को करबला में आसानी देखा जा सकता है।

60 हिजरी का वह इस्लाम वह इस्लाम था जो हक़ीक़तों से कोसों दूर था, जिसमें बिदअतों का बोलबाला था, इलाही अहकाम को पामाल किया जा रहा था, इस्लाम के हाकिम धोखे और अपनी ताक़त के बल पर लोगों को यह समझाने पर तुले थे कि देखो यही हक़ीक़ी इस्लाम है। और सीधी-सादी बल्कि नासमझी की शिकार अवाम भी उनके झांसे में आकर उनको इस्लाम और अवाम का हक़ीक़ी दर्दमंद समझने लगी थी। दीने मोहम्मद[स०] दीने यज़ीद कहलाया जाने लगा था। ऐसे माहोल में दीने मोहम्मद[स०] के हक़ीक़ी वारिस ने कश्ती-ए-निजात बनकर सदाए हक़ बुलंद की और अपने भरे घर को खुदा की राह में निछावर करके दीने इस्लाम को मौत के मुँह से निकाल लिया जिस से इस्लाम को एक नई हयात मिली।

यज़ीदी भंवर में डूबती इस्लाम की कश्ती को हुसैन[अ०] और आपके सहाबियों ने बचा तो लिया लेकिन उसे साहिल पर लगाने के लिए ज़ैनब[स०] की ज़रूरत थी। ज़ैनब[स०] ने ज़िंदगी के हर मोड़ पर हुसैन[अ०] का साथ दिया। हमेशा साए की तरह उनके साथ-साथ रहीं।

वैसे तो जनाबे ज़ैनब[स०] बहुत सी खुसूसियतों की मालिक थीं लेकिन आपकी कुछ खुसूसियतें को यूँ बयान किया जा सकता है।

ज़ैनबः शरीकतुल हुसैन[स०]

इसमें कोई शक नहीं है कि अली[अ०] की बेटी ज़ैनब, शरीकतुल हुसैन[अ०] है। इमाम अली[अ०] की दूसरी बेटी के होते हुए सिर्फ़ जनाबे ज़ैनब को यह शरफ़ क्यों मिला? इस पर बात करना ज़रूरी है। ज़ैनब शरीकतु हुसैन कैसे हैं? वह कौन सी चीज़ है जिसमे ज़ैनब[स०] हुसैन[अ०] की शरीक हैं। क्या हुसैन[अ०] के सफ़र में शरीक होने की वजह से शरीकतुल हुसैन हैं? अगर ऐसा है तो और भी औरतें इमाम हुसैन[अ०] की हमसफ़र थीं जिनमें हज़रत अली[अ०] की दूसरी बेटियाँ भी शामिल हैं । इस से पता चलता है कि इसकी वजह कुछ और है।

कुछ लोगों का कहना है कि जनाबे ज़ैनब[स०] के शरीकतुल हुसैन[अ०] होने की एक वजह यह है कि दोनों भाई-बहन अली[अ०] व फ़ातिमा[स०] की औलाद थे। लेकिन इसमें तो जनाबे उम्मे कुलसूम[स०] भी हज़रत ज़ैनब[स०] के बराबर थीं।

तो फिर क्या ऐसा इसलिए है कि हुसैन पर पड़ने वाली मुसीबतों में जनाबे ज़ैनब[स०] इमाम हुसैन[स०] के साथ बराबर की शरीक थीं? लेकिन इस बारे में भी दूसरी सारी औरतें भी हुसैन[अ०] की मुसीबत में बराबर की शरीक थीं।

सिर्फ़ जनाबे ज़ैनब[स०] को शरीकतुल हुसैन का ख़िताब मिलना इस बात की तरफ़ इशारा है कि कोई न कोई ख़ास बात जनाबे ज़ैनब[स०] में ज़रूर थी। आइए! देखते हैं कि वह ख़ास बात क्या थी।

इसमें कोई शक नहीं है कि इमाम हुसैन[अ०] के सारे सहाबी और बनी हाशिम इस शहादत के मर्तबे में और पड़ने वाली मुसीबतों में हुसैन[अ०] के साथ बराबर के शरीक थे। लेकिन इमाम[अ०] और दूसरों में फ़र्क़ यह है कि हुसैन[अ०] सदाए हक़ बुलंद करने वाले थे जबकि दूसरे हुसैन[अ०] की आवाज़ पर लब्बैक कहने वाले थे। करबला के क़ैदियों में वही इफ़्तेख़ार जनाबे ज़ैनब को हासिल है, जो दुसरे शहीदों में इमाम हुसैन[अ०] को हासिल था। यही वह ख़ास वजह है जिसकी वजह से जनाबे ज़ैनब को शरीकतुल हुसैन कहा जाता है।[2]

इबादत और राज़ो नियाज़

इस अज़ीम ख़ातून की एक ख़ासियत यह भी थी कि आप खुदा की बारगाह में दुआओं, मुनाजातों और बन्दगी में भी अपनी मिसाल आप थीं। रिवायतों में मिलता है कि आप शबे आशूर और शामे ग़रीबाँ में भी नमाज़े शब पढ़ना नहीं भूली थीं। आप पूरी रात इबादत और तिलावते क़ुरआन में बसर करती थीं। इमाम ज़ैनुल आबेदीन[अ०] फ़रमाते हैं, "जब हम लोगों को कूफ़े से शाम ले जाया जा रहा था, तब भी इतनी मुसीबतों के बावजूद फूफी ज़ैनब ने नमाज़े शब को कभी नहीं छोड़ा।

जहाँ मौक़ा मिलता था दुआओं और परवरदिगार की इबादत में मशगूल हो जाती थीं। इमाम हुसैन आख़िरी विदा लेते वक़्त अपनी प्यारी बहन ज़ैनब से कह रहे थे, "ऐ बहन! मुझे नमाज़े शब में न भूलना।"[3]

एक मासूम के यह अलफ़ाज़ जनाबे ज़ैनब[स०] की बन्दगी के मर्तबे को बता रहे हैं जिसका तसव्वुर भी आम इंसान के बस में नहीं है। यही वह खुसूसियतें थीं जिनकी वजह से आपको सानी-ए-ज़हरा भी कहा जाने लगा था।

शुजाअत और बहादुरी

जनाबे ज़ैनब[अ०] को शुजाअत अपने बाबा अली[अ०] और माँ ज़हरा[स०] से विरसे में मिली थी। जब इमामे सज्जाद[अ०] को इब्ने ज़ियाद के दरबार में लाया गया तो इब्ने ज़ियाद आपकी हक़ पसंद गुफ़्तगू सुनकर आग बगोला हो गया और फ़ौरन जल्लाद को इमाम के क़त्ल का हुक्म दे दिया। इब्ने ज़ियाद का हुक्म सुनते ही जनाबे ज़ैनब[स०] बेताब होकर भतीजे से लिपट गईं और कहने लगीं, "ऐ इब्ने ज़ियाद! बस कर। बहुत ख़ून बहा चुका। क्या अब तक तू हमारे ख़ून से सैराब नहीं हुआ। क़सम खुदा की! मैं इससे जुदा नहीं हो सकती। अगर इसको क़त्ल करना चाहता हो तो पहले मुझे क़त्ल कर।" यह सुनने के बाद इब्ने ज़ियाद कुछ देर तक

जनाबे ज़ैनब[अ०] और इमाम सज्जाद[अ०] को देखता रहा और आपके क़त्ल की हिम्मत न कर सका। इस तरह इमाम[अ०] शहीद होने से बच गए।[(4)] इसी तरह शाम में भी आपने इमाम[अ०] को क़त्ल होने से बचाया था। बल्कि यूँ कहा जाए कि आपने अपने भतीजे को नहीं बचाया बल्कि इमामत और दीने इस्लाम को बचाया है क्योंकि इमाम ख़ुदा के दीन का बचाने वाला होता है।

बचा के नस्ले इमामत को लाई है ज़ैनब[स०]
मदीने वालो! इसे हक़ की पासबान कहो।
(आसिम मोहम्मदाबादी)

इस मुक़ाम पर आप अपनी माँ जैसी ही नज़र आती हैं। जिस तरह आपने इमामे वक़्त को बचाने की भरपूर कोशिश की उसी तरह यही काम आपकी मां ने भी किया था। जिस वक़्त इमाम अली[अ०] को गिरफ़्तार किया जाने लगा तो जनाबे ज़हरा उनकी कमर पकड़ कर खड़ी हो गईं थीं लेकिन ज़ालिमों के ताज़ियानों की वजह से आपको इमाम को छोड़ना पड़ गया था।

सब्र

आप सब्र में भी बेमिसाल थीं जिसे करबला में अच्छी तरह देखा जा सकता है। यह दिल को हिला देने वाली बात है कि जिस भाई को ज़ैनब[स०] एक लम्हे के लिए भी नहीं छोड़ सकती थीं उस भाई के पामाल लाशे पर पहुँचने के बाद हाथों को आसमान की तरफ़ बुलंद करके कहती हैं, "हम अहलेबैत से इस क़ुरबानी को क़ुबूल फ़रमा!"[(5)] और यही नहीं बल्कि आपने अपने दो चाँद जैसे बेटों को भी भाई पर क़ुरबान करके शुक्र का सजदा किया था।

इमाम हुसैन[अ०] और जनाबे ज़ैनब[स०] ने दुनिया वालों को यह सबक़ दिया कि देखो जब कभी इस्लाम पर मुसीबत आए और दीने इस्लाम को मिटाने की साज़िश की जा रही हो तो अपना भरा घर यहाँ तक कि दूध पीते बच्चों और जिगर के टुकड़ों को भी इस राह में क़ुरबान करके दीन को बचा लेना चाहिए।

राहे ख़ालिक़ में शबाबे अली अकबर दे दो
दीने हक़ के लिए सर, सिब्ते पैयम्बर, दे दो
गर कभी देखो कि आ जाए बुरा वक़्त कोई
दीने इस्लाम बचाने को भरा घर दे दो

जनाबे ज़ैनब[स०] का वह ख़ूबसूरत जुमला भी याद आ रहा है कि जिस वक़्त कूफ़े के हाकिम ने अपने दरबार में आपसे यह सवाल किया था कि ख़ुदा ने तुम्हारे भाई और ख़ानदान के साथ जो बर्ताव किया, उसके बारे में तुम कैसा महसूस कर रही हो। तो आपने जवाब में कहा था, "मैंने ख़ुदा की तरफ़ से अच्छाई और नेकी के अलावा कुछ नहीं देखा"।[(6)] यहाँ पर भी आप हज़रत ज़हरा[स०] की हू-बहू तस्वीर नज़र आ रही हैं। सारी मुसीबतों के बावजूद जिस तरह हज़रत ज़हरा[स०] की ज़बान पर ख़ुदा की हम्द और तारीफ़ के सिवा कुछ नहीं था उसी तरह आप की बेटी भी नज़र आ रही है।

तक़्वा

इस्लाम में तक़्वे का भी बहुत बड़ा मर्तबा है जिसकी इस्लाम में बहुत ज़्यादा तारीफ़ की गई है। इस सिलसिले से बहुत सारी रिवायतें मौजूद हैं जिसमें से एक यह है। इमाम अली[अ०] फ़रमाते हैं, "ज़ीनत, हवा व हवस और दुनिया की मोहब्बत को छोड़ देना ही हक़ीक़ी तक़्वा व ज़ोहद है।"[(7)] इस पर सबसे ज़्यादा अमल जनाबे ज़ैनब[स०] ने करके दिखाया है। जिसने दो चाँद जैसे बेटों, घर, शौहर और अपने तमाम माल को दीने की हिफ़ाज़त और विलायत के डिफ़ेंस में क़ुरबान कर दिया हो उस से बड़ी मिसाल मासूमीन के अलावा किसी के यहाँ नज़र नहीं आती।

सख़ावत और बख़शिश

यह शरफ़ सिर्फ़ अहलेबैत ही को हासिल है कि उनके बच्चे सख़ावत में भी बेमिसाल हैं। ऐसा सिर्फ़ एक दो बार नहीं बल्कि बार-बार देखने में आया है। जैसा कि एक दिन का वाक़ेआ है कि एक मेहमान इमाम अली[अ०] के घर आया और उसने खाना माँगा। घर में थोड़ी देर तक ख़ामोशी रही और फिर जवाब मिला, "इस वक़्त घर में खाने के लिए कुछ भी नहीं है। हाँ ! थोड़ा सा खाना ज़ैनब के हिस्से का रखा है, जो अब खाने ही वाली है। जनाबे ज़ैनब[स०] ने जैसे ही यह जुमला सुना फ़ौरन बिस्तर से खड़ी होकर बोलीं, "आप यह खाना दे दीजिए। मैं सब्र करूँगी।"[(8)] इस बात से आसानी से अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि जब आप की बख़शिश का बचपने में यह हाल था तो आगे चलकर क्या हाल रहा होगा।

जनाबे ज़ैनब[स०] ने ऐसा कारनामा अंजाम दिया है जिसे रहती दुनिया तक भुलाया नहीं किया जा सकता। ऐसी मिसाली शख़सियत अहलेबैत के घराने के अलावा कहीं नज़र नहीं आती कि हज़रत ज़हरा[स०] की गोद में परवरिश पाई हुई ज़ैनब का दुनिया क्या जवाब लाए।

इमाम हुसैन[अ०] ने जो सदाए हक़ बुलंद की थी, अगर ज़ैनब[स०] न होतीं तो वह इमाम की शहादत के बाद शायद वहीं दब के रह जाती। किसी ने बिल्कुल सही कहा है कि "जो गुज़र गए उन्होंने कारे हुसैनी अंजाम दिया है, जो रह गए उन्हें कारनामा-ए-ज़ैनब[स०] अंजाम देना है"।

इसलिए जो भी सदाए हक़ बुलंद करते हुए मंज़िल तक पहुँचने से पहले गुज़र गया, अब हमारा काम है कि उसकी इस आवाज़ को दबने न दें और अपने पूरे वुजूद के साथ लब्बैक कहें। अगर ऐसा हुआ तो हम कामयाब हैं वरना यज़ीद जैसे फ़ासिक़ व फ़ाजिर हाकिम के जुल्म सहने के लिए तैयार रहें।

1-सूरए अहज़ाब/21, 2-क़यामे इमाम हुसैन, अस्बाब व नताएज/3, 3-ख़सायसे ज़ैनबिया, 4-अल-इरशाद/473, 5-अबु मख़नफ़/26, 6-बिहारूल अनवार, 45/116, 7-जामेउल अख़बार/109, 8- रियाहीनुश्शरीआ, 3/64

हुसैन अ० कौन हुसैन अ०

■ इक़बाल मिर्ज़ा

किसी ने मुझसे ये पूछा हुसैन अ० कौन हुसैन अ० ?
न इस से पहले कोई था न दूसरा होगा
लिखी है ख़ून से तारीख़े करबला जिस ने
उसी हुसैन अ० का हम ज़िक्र आज करते हैं
वह ख़ुद नबी तो नहीं वारिसे नुबुव्वत था
जिसे रसूल अ० से निस्बत, अली अ० से उलफ़त थी
जिसे रुमूज़े कुरआँ इस तरह से आते थे
शुजा वह ऐसा शुजाअत भी जिस पे नाज़ करे
वह इल्म बाँटा किया ता हयात दुनिया को
हुसैन आलमे हस्ती पे यूँ समाया है
कटी हुई थीं ज़बानें यज़ीद के आगे
अभी नमू में था इस्लाम वह ज़माना था
अबूलहब की जेहालत दिलों पे तारी थी
इधर रसूल अ० के साथी जहाँ में बाक़ी थे
अबूलहब की हिमायत यज़ीद ने चाही
हुसूले ज़र जिन्हें मक़सूद था यज़ीदी थे
कुरआन सच है, ख़ुदा है, नबी मुहम्मद अ० हैं
शहीद मर नहीं सकता मिसाल ख़ुद हैं हुसैन अ०
हुसैन अ० हुसैन अ० है, हक़ है दिलों में रहता है
बताया मैंने कि दुनिया में है बस एक हुसैन अ०
न करबला का कभी और वाक़िआ होगा
निसार कर दिये अहबाब व अक़रबा जिस ने
इसी की फ़िक्र ज़माने में आम करते हैं
हर एक तरह से वही वारिसे ख़िलाफ़त था
हसन से, फ़ातिमा ज़हरा से जिसकी कुरबत थी
रसूल अ० पाक मुहब्बत से ख़ुद पढ़ाते थे
सख़ी वह ऐसा सख़ावत भी जिस पे फ़ख़्र करे
हयात क्या है बताता रहा वह दुनिया को
बुझा सके न ज़माना वह नूर लाया है
झुके हुए थे बहुत सर यज़ीद के आगे
अबूलहब से क़रीं तर का वह ज़माना था
वह नूर देख सकें इस से आखँ आरी थी
अभी हुसैन अलैहिस्सलाम बाक़ी थे
रसूल अ० पाक की नुस्रत हुसैन अ० ने चाही
ख़ुदा के क़ुर्ब की ख़ातिर जो थे हुसैनी थे
हुसैन इसकी शहादत में ख़ुद शहीद हुए
जो हक़ से फिर नहीं सकता उसी का नाम हुसैन
हमारी फ़िक्र का दरिया इसी से मिलता है

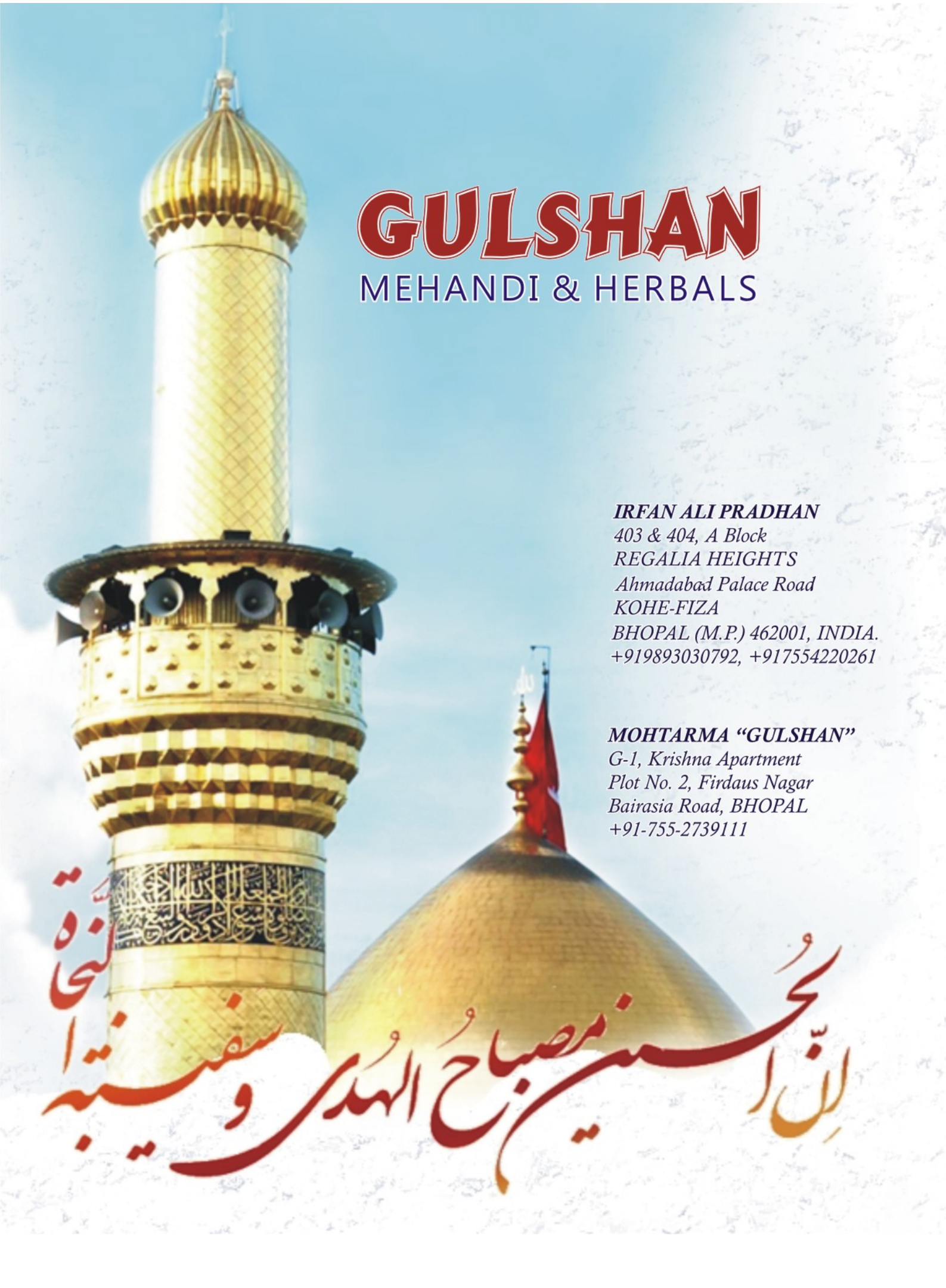
GULSHAN
MEHANDI & HERBALS
IRFAN ALI PRADHAN
403 & 404, A Block
REGALIA HEIGHTS
Ahmadabad Palace Road
KOHE-FIZA
BHOPAL (M.P.) 462001, INDIA.
+919893030792, +917554220261
MOHTARMA "GULSHAN"
G-1, Krishna Apartment
Plot No. 2, Firdaus Nagar
Bairasia Road, BHOPAL
+91-755-2739111
إنّ الحسين مصباح الهدى وسفينة النجاة

मरयम

का एक साल पूरा होने के मौक़े पर

हम आपके घर लेकर आ रहे हैं ख़ूबसूरत और क़ीमती

तोहफ़े

पहला इनाम	: उमरा
दूसरा इनाम	: फ़्रिज
तीसरा इनाम	: माइक्रोवेव
चौथा इनाम	: मोबाईल सेट
पांचवां इनाम	: डिनर सेट
छटा इनाम	: ज्वैलरी
सातवां इनाम	: मिक्सर
आठवां इनाम	: पंखा
नवां इनाम	: लेमन सेट
दसवां इनाम	: घड़ी

दिसम्बर 2011 से मरयम में हर महीने एक कूपन छपेगा।
10 कूपन जमा करके मरयम की तरफ़ से दी जाने वाली आख़िरी तारीख़ तक कूपन भेजने वालों में से ड्रॉ के ज़रिए 10 लोगों को सिलेक्ट करके इनाम दिए जाएंगे।
अगर आप मरयम के सब्सक्राईबर नहीं हैं तो जल्दी कीजिए।
ख़ुद भी सब्सक्राईब कीजिए और अपने रिश्तेदारों व दोस्तों को भी सब्सक्राईब कराईए और इस स्कीम से फ़ायदा उठाने का मौक़ा हाथ से मत जाने दीजिए!

नियम व शर्तें:

1. मरयम में हर महीने अलग-अलग तरह के कूपन छापे जाएंगे। दिसम्बर 2011 से नवम्बर 2012 तक 10 कूपन जमा करके भेजने वालों को ही इस ड्रॉ में शामिल किया जाएगा।
2. मरयम की टीम का फ़ैसला ही आख़िरी होगा और इस बारे में किसी को कोई एतेराज़ का हक़ नहीं होगा।
3. इस सिलसिले में किसी भी तरह की अदालती कार्यवाई सिर्फ़ लखनऊ की अदालत में ही की जा सकेगी।

Contact No.:
+91-522-4009558
+91-9956620017
+91-9892393414 (Mumbai)
maryammonthly@gmail.com